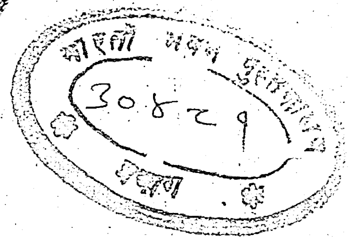
श्रीमद्भगवद्गीता-संख्या १

अर्जुन-मोह





प्रकाशक—
नेपाल गवर्नमेण्ट से 'कथावाचस्पति' की पदवी प्राप्त—
कीर्तन-कला-निधि, काव्य-कला-भूषण, श्रीहरि-कथा-विशारद, कविरत्न—

राधेश्याम कथावाचक



अध्यक्ष—श्रीराधेश्याम-पुस्तकालय, बरेली।

मूल्य ।)॥ आने

पं० राधेश्यामजी कविरत्न लिखित नवीन कृति

कृष्णायन

जन्माष्टमी ।=) नन्द-महोत्सव ।=)
कमलीवाला कन्हैया ।=) गिरिवरधारी ।=)
रास-रहस्य ।=) कंस-वध ।=)
नन्द-नन्दन-वसुदेव-नन्दन ।=)

सम्पूर्ण सातों भाग एक सुन्दर जिल्द में छः आने अधिक देने पर अर्थात् तीन रुपए में मिलेंगे। डाक महसूल ।≡) अलग

रुक्मिणी-मंगल

(राधेश्याम रामायण की तर्ज में)

रुक्मिणी-जन्म ।=)
रुक्मिणी का कृष्ण प्रेम ।=)
रुक्मिणी की सगाई ।=)
रुक्मिणी का पत्र-लेखन ।=)
रुक्मिणी का गिरिजा-पूजन ।=)
रुक्मिणी का भ्रातृस्नेह ।=
रुक्मिणी विवाह ।=)

सम्पूर्ण सातों भाग एक सुन्दर जिल्द में छः आने अधिक देने पर अर्थात् तीन रुपए में मिलेंगे। डाक महसूल ।≡) अलग

श्रीमद्भगवद्गीता

(राधेश्याम रामायण की तर्ज में)

अर्जुनमोह ।)॥ विराट्रूप-दर्शन ।)॥
आत्मा की अमरता ।)॥ जीव-ब्रह्म-विवेक ।)॥
कर्म-योग ।)॥ अर्जुन का समान ।)॥

नोट—सम्पूर्ण ६ भाग एक सुन्दर जिल्द में ।-) अधिक देने पर, अर्थात् २) में, मिलेंगे तथा जिल्ददार गुटका १।)रु० में मिलेगा। डाक महसूल गुटका ।-) अलग अलग भाग पर ।=)।

दुर्गा—चरित्र

(राधेश्याम रामायण की तर्ज में)

महिषासुर-वध ।=)
शुम्भ का उत्पात ।=)
चण्डमुण्ड का पराक्रम ।=)
रक्त-बीज की लड़ाई ।=)
शुम्भ और निशुम्भ का वध ।=)

नोट सम्पूर्ण ५ भाग एक सुन्दर जिल्द में छः आने अधिक देने पर अर्थात् २) में मिलेंगे, तथा जिल्ददार गुटका १।।) में मिलेगा। डाक महसूल गुटका ।-) अलग अलग भाग पर ।=)।

महाभारत

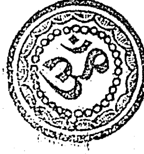
(राधेश्याम रामायण की तर्ज में)

भीष्म-प्रतिज्ञा ।=)
भीष्म-पराक्रम ।=)
पाण्डव-जन्म ।=)
पाण्डवों का बाल्य-काल ।=)
पाण्डवों की शस्त्र-परीक्षा ।=)
लाक्षागृह ।=)
बक-संहार ।=)
द्रौपदी-विवाह ।=)
सुभद्रा-हरण ।=
राजसूय-यज्ञ ।=)
द्रौपदी-वस्त्र-हरण ।=)
किरातार्जुन-युद्ध ।=)
यक्ष-सम्वाद ।=)
कीचक-वध ।=)
अभिमन्यु विवाह ।=)

अन्य कथायें

(राधेश्याम रामायण की तर्ज में)

नरसी की हुंडी ।)॥
श्रीसत्यनारायण की कथा ।=)
प्रह्लाद-चरित्र ।=)
ध्रुव-चरित्र ।=)
सुदामा-चरित्र ।=)
मोरध्वज-चरित्र ।=)
भर्तृहरि-चरित्र ।=)
महाराणा प्रतापसिंह ।=)
सत्यवादी हरिश्चन्द्र ।=)
सावित्री-सत्यवान ।=)
मीराबाई ।=)
भक्त-अम्बरीष ।=)
अभिमन्यु की वीरता ।=)
गुरु गोविन्दसिंह ।=)
गुरु नानक ।=)
बुद्ध-चरित्र ।=)
द्रौपदी-लीला ।)॥
महाराजा दिलीप ।)॥
सती स्वयम्बर ।=)
सती मोह ।=)
महर्षि चरित्र (७) भाग १॥)



श्रीमद्भगवद्गीता

वा

(कृष्णार्जुन-सम्वाद)

संख्या—१

लेखक—

प० रामनारायण पाठक

अर्जुन-मोह

प्रकाशक—

नेपाल गवर्नमेण्ट से "कथावाचस्पति" की पदवीप्राप्त—
कीर्तन-कला-निधि, काव्य-कला-भूषण,
श्रीहरि-कथा-विशारद, कविरत्न—

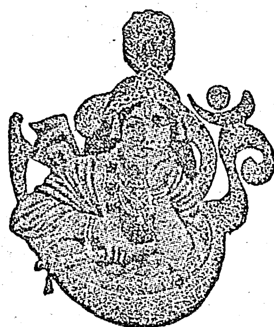
प० राधेश्याम कथावाचक,

अध्यक्ष—

श्रीराधेश्याम-पुस्तकालय
बरेली

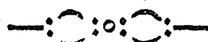
आठवीं बार २०००] सन् १९४६ ई० [मूल्य साढ़े चार आने

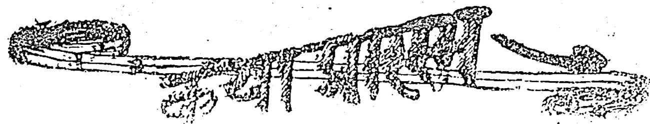
प्रिंटर—पं० रामनारायण पाठक, श्रीराधेश्याम-प्रेस, बरेली।



प्रार्थना

सुनोगे कबतक मेरी टेर ?
कहते हैं जो तुम्हें पुकारे सच्चे दिल से नाथ !
उसकी ओर बढ़ा देते हो, तुम भी अपना हाथ ॥
करी क्यों मेरी बेर अबेर ?
सुनोगे कबतक मेरी टेर ?
दुखभञ्जन तुम हो भक्तों के दुःख निवारणहार ।
टूटा नहीं आजतक फिर भी मेरे दुख का तार ॥
उचित क्या है ऐसा अन्धेर ?
सुनोगे कबतक मेरी टेर ?
साधु पुरुष तो निज कर्मों से पाते हैं उद्धार ।
बात तुम्हारी तब है जब हों हम से पापी पार ॥
ज़रा लो नज़र इधर भी फेर ।
सुनोगे कबतक मेरी टेर ?
नाना चिन्ताओं से जग की दुखी होरहे प्राण ।
कष्ट–काटने–वाली अब तो ले लो हाथ कृपाण ॥
हो रही दिन दिन दूनी देर ।
सुनोगे कबतक मेरी टेर ?





सुन्दर जिनके नाम से, पूर्ण होंय सब काम ।
प्रथम उन्हीं गणराज को, श्रद्धा सहित प्रणाम ॥
विमल बुद्धि-वरदायिनी, शारद दें वरदान ।
ललित लिखे तब लेखनी, कलित कथा कल गान ॥
एक बार जो आज फिर, कृष्ण करें उपकार ।
गूँजे घर घर देश में, गीता की गुञ्जार ॥

[व्याख्यान- द्वापरयुग के अन्त में कुरुक्षेत्र के मैदान में एक महाभयङ्कर युद्ध हुआ था । इस युद्ध को महाभारत कहते हैं । जिस पोथी में इस महाभारत युद्ध का वृत्तान्त लिखा गया है उसका भी नाम महाभारत है । इस महाभारत के युद्ध का कारण था-भाई भाई की अपुस की फूट ।

द्वापरयुग में भारत के चन्द्रवंशी राजाओं में महाराज शान्तनु बड़े पराक्रमी राजा थे। उनके कुमार देवव्रत नाम के एक सुयोग्य पुत्र थे । जिन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपने जीवन में विवाह नहीं करूँगा । यह प्रतिज्ञा कुमार देवव्रत को अपने पिता को सुखी करने के लिए करना पड़ी थी । बात यह हुई कि कुमार देवव्रत के पिता 'महाराज शान्तनु' सत्यवती नाम की एक कन्या से विवाह करना चाहते थे कन्या का पिता महाराजा शान्तनु से कहता था कि आप यह प्रतिज्ञा करें कि राजगद्दी पर सत्यवती ही का बेटा, बैठेगा तब मैं अपनी कन्या आपको प्रदान करूँगा । महाराज इस प्रतिज्ञा से हिचके, किन्तु कुमार देवव्रत ने अपनी तरफ़ से उपर्युक्त प्रतिज्ञा करके कन्या के पिता को विश्वास दिला दिया कि सत्यवती की सन्तान के अतिरिक्त और दूसरा कोई गद्दी का अधिकारी उत्पन्न ही न होगा ।

सत्यवती के चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नाम के दो पुत्र हुये और होकर निःसन्तान ही परलोकवासी होगए। तब कुमार देवव्रत ने (जो अपनी भीष्म प्रतिज्ञा के कारण 'भीष्म' के नाम से प्रसिद्ध होगए थे) ब्रह्मर्षि वेदव्यास जी के तपोबल से अपने दोनों भाइयों की विधवाओं से पाण्डु और धृतराष्ट्र नाम के दो पुत्र उत्पन्न कराये। धृतराष्ट्र माता के पेट से अन्धे उत्पन्न हुए थे। इसलिए बड़े होने पर भी वे गद्दी पर न बैठे। हाँ, पाण्डु राजा बने। महाराज पाण्डु के पांच पुत्र हुए-युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव। यह पांचों पुत्र पांच पांडव कहलाये। महाराज धृतराष्ट्र के सौ पुत्र हुए जो कौरवों के नाम से प्रसिद्ध हुए, सौ कौरवों में दुर्योधन सबसे बड़े थे महाराज पाण्डु के देहान्त होजाने पर भीष्म को ही अपने पोतों का लालन पालन करना पड़ा जो उन्होंने बड़ी योग्यता से किया। द्रोणाचार्य नाम के एक विद्वान् धनुर्वेत्ता ब्राह्मण को उन्होंने अपने पोतों को धनुर्विद्या सिखाने को रक्खा। समय पाकर पाण्डव और कौरव दोनों ही युद्ध करने में निपुण हुए। किन्तु पाण्डव और कौरवों में मेल बिलकुल न हुआ। कौरव अन्यायी थे और पाण्डवों को राज्य से बिलकुल निकाल कर सारा राज्य आप ही लेना चाहते थे। इसलिए कुरुक्षेत्र की भूमि पर महाभारत का वह संग्राम हुआ जिसका ज़िक्र ऊपर किया गया है।

यह महाभारत युद्ध जब आरम्भ होने वाला था तब घूमते फिरते ब्रह्मर्षि वेदव्यास जी महाराज धृतराष्ट्र के पास आये। उन्होंने 'सञ्जय' नामक अपने शिष्य को धृतराष्ट्र के पास इसलिए छोड़ दिया कि वह उन्हें घर बैठे ही युद्ध का सारा समाचार सुनाता रहे। अतएव सञ्जय ने महाराज धृतराष्ट्र को सुनाया कि अर्जुन ने दुःखी होकर युद्धभूमि में लड़ने से जब मुंह मोड़ लिया तब अर्जुन के भाई और मित्र श्रीकृष्ण ने (जो युद्ध में अर्जुन का रथ हांकते थे) अद्भुत और अनुपम उपदेश सुनाकर अर्जुन को फिर युद्ध करने को तैयार कर दिया। धृतराष्ट्र ने इस उपदेश को अक्षरशः सुनने की इच्छा प्रकट की। वासुदेव श्रीकृष्ण का वह उपदेश श्रीमद्भगवद्गीता के नाम से संसार में प्रसिद्ध है, और उसी उपदेश को हम यहां हिन्दी जानने वाले पाठकों के लिए सरल हिन्दी के छन्दों में लिखने की चेष्टा करते हैं]

सञ्जय से धृतराष्ट्र ने, कहा प्रसङ्ग चलाय।
"महायुद्ध का हाल अब, कहो मुझे समझाय॥

कुरुक्षेत्र की भूमि में, जुटे जहां रणधीर ।
मेरे पुत्रों से भिड़े, कैसे पाण्डव वीर ?''
महाराज के वैन सुन, करके मन एकान्त ।
सञ्जय ने आरम्भ यों, किया युद्ध वृत्तान्त ॥

''हे महाराज, क्या बतलाऊँ, था कैसा वह संग्राम प्रबल ।
थी एक ओर कौरव-सेना दूसरी ओर था पाण्डव-दल ॥
यह दोनों भारी सेनाएँ, अस्त्रों-शस्त्रों से सजधज कर ।
लड़ने को जब तैयार हुईं, प्राणों की ममता तज तज कर ॥
तब महाराज दुर्योधन ने, आचार्य द्रोण के सँग जाकर ।
अपनी सब सज्जित सेना की, देखा भाली की सुख पाकर ॥
फिर कहा द्रोण से-'महाराज', देखिये पाण्डवों का भी दल ।
आचार्य, सरसरी नज़र डाल, जांचिए शत्रुओं का भी बल ॥
मैंने तो सारा पांडव-दल, जितना भी देखा भाला है ।
उससे अपने मन में बस एक, अन्तिम परिणाम निकाला है ॥
वह यह कि पाण्डवों ने यद्यपि, कितने ही वीर बुलाये हैं ।
जो अपनी अपनी सेनाएँ, ले ले कर लड़ने आये हैं ॥
लेकिन वे सबके सब मिलकर, कुछ काम बना नहीं सकते हैं ।
यदि भीष्म पितामह डटे रहे तो हमें हरा नहिं सकते हैं ॥''

[व्याख्यान—यहां शंका हो सकती है कि दुर्योधन और उसके भाई जब पाण्डवों के साथ अन्याय कर रहे थे तो भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य से बुद्धिमान् और न्यायवान् योद्धा क्यों दुर्योधन के पक्षपाती होकर अन्याय के भागी हुए। इस शंका का उत्तर महाभारत में अच्छी तरह से दिया गया है। दुर्योधन राजा था और भीष्म पितामह तथा द्रोणाचार्य दोनों ही सज्जन, दुर्योधन के धन से अपना भरण-पोषण करते थे। इसलिए युद्ध से पहले युधिष्ठिर जब

भीष्म पितामह के पास उनका आशीर्वाद लेने गये तो उन्होंने आशीर्वाद देने के साथ ही साथ अपनी स्थिति समझाते हुए युधिष्ठिर से कहा—

अर्थस्य पुरुषो दासो ह्यर्थो दासो न कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥

अर्थात्—हे महाराज युधिष्ठिर, धन किसी का दास नहीं है। हाँ पुरुष धन का दास है। सो मुझे कौरवों ने धन से ही लाचार कर रक्खा है। इस कथन से कोई यह न समझ लें कि भीष्म पितामह दुर्योधन के धन के दबाव में आकर उसके साथी बन गये। मुख्य बात यह है कि भीष्म पितामह अन्तःकरण से कभी दुर्योधन के साथ नहीं हुए। दुर्योधन के बुरे कर्मों की बराबर उसके मुंह पर ही निन्दा किया करते थे। साथ ही, उन्होंने यह भी प्रकट कर दिया था कि मैं मन से पाण्डवों का पक्षपाती हूँ और तन से कौरवों का। कौरवों के धन से भीष्म पितामह का शरीर पला था, सो तन उन्होंने कौरवों की सेवा में दे डाला। मन पर कौरवों का अधिकार कुछ नहीं था इसलिए मन उन्होंने पाण्डवों के लिए रक्खा। यह बात आगे चल कर भगवद्गीता में ही आयेगी कि यदि मनुष्य किसी कार्य में अपना मन आसक्त न करके केवल हाथ पैर से ही वह कार्य करे तो उस कार्य का पाप व पुण्य उसे नहीं भोगना पड़ता। भीष्म पितामह यह तत्त्व समझते थे, और इसीलिए वे शरीर से कौरवों की सेवा करते हुए भी मन से पाण्डवों का भला चाहते रहे, और इस तरह पाप के भागी नहीं हुए]

दुर्योधन की बात सुन, हुए द्रोण गम्भीर ।
सोच समझ कर अन्त में, यों बोले रणधीर ॥

"राजन् इसमें सन्देह नहीं, रणशूर भीष्म अति भारी हैं ।
अबतक जो रहे ब्रह्मचारी, इसलिए अतुल बलधारी हैं ॥
लेकिन, फिर भी अपने मन में, रह रह कर संशय होता है ।
श्रीकृष्ण पाण्डवों के संग हैं, इससे कुछ कुछ भय होता है ॥
आवाज़ हृदय के भीतर से, उठ उठ कर कहती है निश्चय ।
'है जहां धर्म बस वहीं कृष्ण, हैं जहां कृष्ण बस वहीं विजय ॥'

सुने जो यह आचार्य के, दुर्योधन ने वैन ।
तीर कलेजे में चुभा, हुआ हृदय बेचैन ॥
क्रोध-भाव से होगया, मुख-मण्डल भी लाल ।
झुंझला कर आचार्य से, बोला यूँ तत्काल ॥

"आचार्य, आपकी बातें सुन, मुझको अति विस्मय होता है ।
आश्चर्य आप सा धनुधारी, योद्धा यों साहस खोता है ॥
यह बात बड़ी लज्जा की है, ऐसी भी दहशत पाना क्या ।
एक मूर्ख अहीर छोकरे से, ऐसा भारी भय खाना क्या ॥
जिसमें बिल्कुल भी बुद्धि नहीं, जिसने साधा कुछ काम नहीं ।
उस हीन पुरुष से क्या डरना, जिसमें बल का कुछ नाम नहीं ॥
जिसने ब्रज में दधि और मक्खन, चोरी कर करके खाया है ।
जिसने कि गोपियों के सँग में, यमुना-तट रास रचाया है ॥
उस चोर और नचकैये से, कहिये क्या होना जाना है ।
रणभूमि है यह रणवीरों की, काले का कठिन खिलाना है ॥

अगर कृष्ण की राय से, चला युद्ध-व्यापार ।
पाण्डव-सेना के लिए, निश्चय है तब हार ॥

देखिए कृष्ण का पागलपन, क्या नादानी की है उसने ।
अपनी नारायण-सेना सब, मेरे सँग करदी है उसने ॥
और आप अकेला ही बिल्कुल, पाण्डव लोगों का साथी है ।
गुरुदेव, आप ही बतलायें, यह कौन बुद्धिमानी की है ?
फिर और देखिए तो कितनी, बेढब उल्टी मति आई है ।
धनुबाण न लूंगा लड़ने को, यह शपथ सरासर खाई है ॥

[व्याख्यान--कौरवों और पाण्डवों में जब युद्ध होना निश्चित हुआ तब दोनों पक्षों ने श्रीकृष्ण भगवान् को अपनी ओर लेना चाहा। दुर्योधन इसी उद्देश से भगवान् श्रीकृष्ण के यहां द्वारका पहुँचे। संयोग से भगवान् उस समय शयन किए हुए थे। दुर्योधन उनके जागने की प्रतीक्षा में बैठ गए। लेकिन अभिमान के वश बैठे सिराहने की तरफ। उनके बैठ जाने के थोड़ी देर बाद अर्जुन पहुँचे, और भगवान् के पांयते बैठे। भगवान् जब जागे तो जागने के साथ ही उनकी दृष्टि पांयते बैठे हुए अर्जुन पर पड़ी। अर्जुन ने भगवान् को जागा हुआ देख कर अपने उपस्थित होने का कारण बतलाया और युद्ध में सहायता चाही-भगवान् ने अर्जुन को सहायता देना स्वीकार कर लिया। पीछे से फिर दुर्योधन ने भी वही बात भगवान् से कही और बतलाया कि मैं अर्जुन से पहले आकर बैठा हूँ भगवान् ने जवाब दिया कि मैंने सबसे पहले अर्जुन को देखा और उसे सहायता देने का वचन दे दिया। अब तुम भी अगर सहायता चाहते हो तो मैं यह कर सकता हूँ कि अपनी नारायणी सेना तुम्हे दे दूँ! दुर्योधन ने नारायणी सेना लेना मंजूर कर लिया और प्रसन्नतापूर्वक घर लौट आए। भगवान् ने यह भी दुर्योधन से कह दिया था कि मैं अर्जुन की ओर से अकेला तो रहूँगा ही पर शस्त्र भी नहीं धारण करूँगा। दुर्योधन भगवान् की इस प्रतिज्ञा से इतने सन्तुष्ट हुए कि उन्होंने आधा युद्ध जीता हुआ उसी समय समझ लिया]

जो कायर रण से डरते हैं, वे यों ही शान दिखाते हैं।
सौगन्दें खाकर लड़ने से, बस अपनी जान चुराते हैं॥
सो बिना बात का ही गुरुवर, यह खौफ़ आपने खाया है।
एक महामूर्ख और कायर का, मुझको हौआ दिखलाया है॥
क्या भीष्म-पितामह के बल को, अति तुच्छ आपने माना है?
या अपने तीखे तीरों को, बेकार आपने जाना है?
फिर यह तो कहिये लड़ने में, क्या कर्ण किसी से भी कम है?
अर्जुन के होश उड़ा देगा, जबतक उसके दम में दम है॥
हैं ऐसे-ऐसे वीर इधर, जो रिपु का गर्व मिटा देंगे।
दिक्पालों को दहला देंगे, पृथ्वी-आकाश हिला देंगे॥

गाना

लड़ाई जब कि वीरों में छिड़ेगी ।
मेरे योद्धाओं की हिम्मत खुलेगी ॥
गुरो, तब देखियेगा तो इधर से ।
झड़ा बौछार तीरों की चलेगी ॥
पियादे से पियादा जा भिड़ेगा ।
सवारों से सवारों की ठनेगी ॥
पितामह भीष्म के बाणों के आगे—
निहत्थे कृष्ण की क्या चल सकेगी ?
कहाँ तक पाण्डवों का दल लड़ेगा ।
यही होगा कि बस भगदड़ पड़ेगी ॥
पराजय पाण्डवों की है यों निश्चय ।
विजय फिर कौरवों ही की मिलेगी ॥"

—०—

दुर्योधन ने जब कहे-ऐसे वचन सुनाय ।
वीर द्रोण आचार्य जी—पड़े तभी मुसकाय ॥
उत्तर में कुछ कह सकें--जबतक वे रणधीर ।
तबतक आई कान में शंखध्वनि—गम्भीर ॥

कौरव-सेना की ओर भीष्म योद्धा अत्यन्त धुरन्धर थे ।
बाक़ी जितने भी योद्धा थे, बल में सब उनसे कमतर थे ॥
इसलिये कौरवों ने उनको सेनापति मुख्य बनाया था ।
और इन्हीं भीष्म सेनापति ने यह अपना शंख बजाया था
यह किया गया था शंखनाद केवल यह सूचित करने को ।
कौरव-सेना सब है तयार पाण्डव-सेना से लड़ने को ॥

उस एक शंख के बजते ही बज उठे अनेकों शंख वहां ।
वह युद्धभूमि भी दहल उठी—जब बजे हजारों शंख वहां ॥
मारू बाजों में जोश भरी मारू गत बजना शुरू हुई ।
चढ़ गए बाण धनुषों पर तलवार निकलना शुरू हुई ॥
श्रीभीष्मपितामह महाबली कौरव-सेना के अधिनायक ।
डट गये मोर्चे पर आकर हाथों में लेकर धनु—शायक ॥

कौरव—सेना जब हुई इस प्रकार तैयार ।
पाण्डव-दल भी बढ़ चला, ले लेकर हथियार ॥

उस कुरुक्षेत्र की धरणी में इसतरह चमक छवि-छटा उठी ।
मानो आमने—सामने से वर्षा की हो घनघटा उठी ॥
शूरों वीरों की तलवारें बिजली की तरह चमकती थीं ।
शंख—ध्वनियां योद्धाओं की बादल की तरह गरजती थीं ॥

बांध रही थीं इस तरह सेनायें जब ज़ोर ।
हुआ तभी एक ओर से घर घर—सा कुछ शोर ॥

सब योद्धाओं ने क्या देखा तेज़ी से एक रथ आता है ।
उस रथ के ऊपर लगा हुआ झंडा फर—फर फहराता है ॥
हैं चार श्वेत घोड़े उसमें जो तेज़ भागते आते हैं ।
और उस रथ को सारथी बने श्रीकृष्ण हांकते आते हैं ॥
फिर यह भी देखा वीरों ने वीरों का बाना किये हुए ।
अर्जुन उस रथ पर बैठे हैं—गाण्डीव धनुष कर लिये हुए ॥

आपहुँचा कुछ देर में रथ बिल्कुल नज़दीक ।
खड़ा होगया आनकर दोनों दल के बीच ॥

अर्जुन और श्रीकृष्ण को, लखकर भले प्रकार ।
पाण्डव-सेना में हुआ-नव जीवन-सञ्चार ॥

जिनके एक ज़रा इशारे से संसार उदय हो जाता है ।
जिनकी भौं टेढ़ी होते ही सर्वत्र प्रलय हो जाता है ॥
जिनके पाने के लिए सदा योगीजन साधन करते हैं ।
जिनके चरणों में भक्तवृन्द तन, मन, धन, अर्पन करते हैं ॥
जो अजर अमर अविनाशी हैं-सर्वव्यापी सुखराशी हैं ।
जो छिपे हुए होने पर भी सबके घट-घट के वासी हैं ।
जिनकी महिमा के लिये वेद नित नेति नेति कह गाते हैं ।
जिनके यश का कुछ ओर छोर नहिं शेष-शारदा पाते हैं ॥
जो सबको सम्पत् देते हैं सम्पत्तिवान् श्रीमान् बने ।
वह अर्जुन का रथ हांक रहे भगवान् आज रथवान् बने ॥
यह लीला प्रभु की देख देख-पांडव-सेना बलिहार हुई ।
उस युद्धभूमि में बार-बार जय सूचक जय जयकार हुई ॥

सेना के उत्साह से सुखी हुए सुखकन्द ।
फिर अर्जुन से इस तरह बोले ब्रज-कुल-चन्द ॥

गाना

"यह देखो अर्जुन भाई, कौरवसेना घिर आई ।
है सब विध सजी सजाई, लड़ने के लिए सवाई ॥
तुम देखो धीरज धर कर,
हैं कौन कौन धन्वाधर,
लड़ने को तुम्हारे दर पर,

लो भली भाँति सब जाँच, परखलो साँच, न आवे आंच,
करो चतुराई ।
यह देखो अर्जुन भाई ॥

(२)

कस-कस कर तीर चलाना,
गिन-गिन कर शीश उड़ाना,
पूरा वीरत्व दिखाना,
सब जगत् हो उठे दंग, जमे वह रंग, शत्रु हो तंग,
रहे यश छाई ।
यह देखो अर्जुन भाई ॥

(३)

नहिं गया समय फिर आवे ।
पछतावा ही रह जावे ॥
चिन्ता दिन—रात्रि सतावे ।
बस, अब तीरों को तोल, उठो जी खोल, बड़ी अनमोल —
घड़ी यह आई ।
यह देखो अर्जुन भाई ॥

—०—

अर्जुन श्री भगवान् के सुनकर ऐसे बैन ।
लगा देखने सैन्य को करके चञ्चल नैन ॥

देखा उसने कौरव-सेना तैयार खड़ी है लड़ने को ।
बेताब होरहे हैं उसके योद्धा सब आगे बढ़ने को ॥
उस रण-मद-माती सेना के मुखिया हैं भीष्म धनुर्धारी ।
रणवीरों का सा ठाट किए हैं द्रोण भी उनके सहकारी ॥
उस सेनादल में ऐसे भी कुछ वीर नज़र में आते हैं ।
जो अर्जुन के सम्बन्धी हैं, जिनसे अर्जुन के नाते हैं ॥

इस तरह सभों को देख भाल और जांच तौल रिपु के बल को ।
चञ्चल चित होकर अर्जुन ने देखा अपने सेना-दल को ॥
देखा अपनी सेना में भी, जो योद्धा सुभट पधारे हैं ।
उनमें भी कुछ सम्बन्धी हैं, कुछ सखा प्राण के प्यारे हैं ॥

दोनों दल में देखकर अपने ही सब लोग ।
अर्जुन दुःखित चित्त हो भूल गया सब योग ॥
कातर होकर कृष्ण से बोला यों बिलखाय ।
"कृष्ण, कहो तो दृश्य यह कैसे देखा जाय !

इन दोनों सेनाओं में जो योद्धा रण के मतवाले हैं ।
उनमें से कितने ही मेरे कुल वाले, आपुस वाले हैं ॥
इन प्रिय स्वजनों को देख देख सब साहस मेरा टूट रहा ।
सीने में धड़कन होती है, गाण्डीव हाथ से छूट रहा ॥
निज बन्धु-नाश के लक्षण जो प्रत्यक्ष मुझे दिखलाते हैं ।
उससे मेरी आंखों आगे रह रह कर चक्कर आते हैं ॥
रहने दो मुझ को क्षमा करो कुछ काम नहीं होगा मुझ से ।
हे कृष्ण, यहां से लौट चलो, संग्राम नहीं होगा मुझसे ॥

जो सारा परिवार यों, नष्ट होरहे आज ।
भोगेगा फिर कौन यह इन्द्रप्रस्थ का राज ?

जिन लोगों के सुख के निमित्त बहु साज सजाया जाता है ।
जिन लोगों के सुख के निमित्त धन .खूब कमाया जाता है ॥
जिन लोगों के सुख के निमित्त हम नाना कष्ट उठाते हैं ।
जिन लोगों के सुख के निमित्त धरणी और धाम बनाते हैं ॥
वे सभी लोग अब आये हैं जीवन न्योछावर करने को ।
प्राणों की ममता छोड़-छाड़, तैयार खड़े हैं मरने को ॥

क्या इन सब लोगों को योंही, आंखों आगे मर जाने दूँ ?
और निज कुटुम्ब की हत्या का, पातक अपने सर आने दूँ ?

प्रिय जन तो सब मर मिटें, मुझे मिले अधिकार ।
है ऐसे अधिकार को लाख बार धिक्कार ॥

धिक्कार है उस धन दौलत पर जो मिले पाप का ढंग करके ।
धिक्कार मिले जो राजपाट यह हाथ खून में रँग करके ॥
लानत है उन सब भोगों पर जो मिलें बन्धु बान्धव खोकर ।
लानत उस अधम जिन्दगी पर जो रहे कलंक लिप्त होकर ॥
कौरव यदि पाप-पुण्य का कुछ मन में विचार नहिं करते हैं ।
यदि वे अधर्म से बिल्कुल भी रत्ती भर भी नहिं डरते हैं ॥
तो क्या मैं भी उनकी नाईं, सारा संकोच मिटा डालूँ ?
क्या जान बूझकर भी अपने सब कुल का नाश करा डालूँ ?

कुल का सत्यानाश है महा भयङ्कर पाप ।
मिलते हैं कुल-नाश से बड़े बड़े सन्ताप ॥

कुल के विनष्ट होजाने पर कुल-रीति नष्ट होजाती है ।
कुल-रीति-नष्ट होजाने पर नारियां भ्रष्ट होजाती हैं ॥
नारियां चरित्र-भ्रष्ट होकर मनमाना पाप कमाती हैं ।
इस पाप-कर्म से सन्तानें जारज पैदा होजाती हैं ॥
जारज सन्तानें होने पर, भारी अनर्थ घिर आते हैं ।
कुल-पुरुष सात पीढ़ी तक के सब नरकलोक में जाते हैं ॥
हे कृष्ण, नाश होना कुल का, कैसी दुखभरी बुराई है ।
रहने दो, बस, मैं बाज़ आया यह युद्ध महा दुखदाई है ॥

व्याख्या—अर्जुन के कहने का अभिप्राय यह है कि युद्ध में पुरुष ही मारे जायेंगे, स्त्रियां नहीं। परिणाम यह होगा कि जब पुरुषों के मारे जाने से स्त्रियाँ

ही स्त्रियाँ बाकी रह जायेंगी तब वे अपने निर्वाह के लिये करने और न करने के सभी उपाय कर सकती हैं; क्योंकि पेट तो भरना ही पड़ेगा। इन उचित अनुचित उपायों को करती हुई स्त्रियां दुष्ट लोगों के फन्दे में फँसकर व्यभिचार के मार्ग में भी पड़ सकती हैं! व्यभिचार के द्वारा कुण्ड'और गोलक दो प्रकार की जारज सन्तान उत्पन्न होती हैं, मनुस्मृति में लिखा है कि—

परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ।
अमृते जारजः कुण्डः, मृते भर्तरि गोलकः॥

अर्थात् पराई स्त्री में व्यभिचार करने से कुण्ड और गोलक दो प्रकार की जारज सन्तानें उत्पन्न होती हैं। पति के जीवित रहने पर व्यभिचार कराके जो जारज सन्तान स्त्री उत्पन्न करती है उसे कुण्ड कहते हैं, और जो पति के मरजाने पर जारज सन्तान उत्पन्न की जाती है वह गोलक कहलाती है। मनुस्मति में यह भी लिखा है कि यह कुण्ड और गोलक सन्तानें अपने पितरों को जलदान और पिण्डदान देने का अधिकार नहीं रखतीं; अर्थात् इनका किया हुआ जलदान और पिण्डदान पितरों को नहीं पहुँचता और पितरों की सुगति नहीं होती]

अपने हाथों आप ही करके कुल का हास।
मैं भी पाऊँगा सखे, घोर नरक में वास॥

कौरव नहिं देते राज मुझे, रहने दो मैं लेता भी नहीं।
क्या करूँगा उस दौलत का जो, नहिं गयी किसी के साथ कहीं?
मैं भिक्षा मांग मांग कर ही अपना सब जन्म बिता दूँगा।
कौरव तल्वार उठायेंगे तो नीचे शीश झुका दूँगा॥
जब एक रोज़ मरना ही है तो मरने से क्या डरना है।
सबको मारूँ और आप रहूं, यह कर्म मुझे नहिं करना है॥
वह देखो कौरव-सेना में जो वीर नज़र में आते हैं।
उनमें आचार्य द्रोण के सँग, दादा भी शोभा पाते हैं॥
आचार्य द्रोण ही ने मुझको योद्धा और वीर बनाया है।
आचार्य द्रोण ही ने मुझको सब धनुर्वेद सिखलाया है॥
फिर दादा की क्या बात कहूं, जो बेहद लाड़ लड़ाते थे।
बचपन में मुझको प्रेम सहित, पहरों तक गोद खिलाते थे॥

इन दोनों महानुभावों का मेरे शिर पर ऋण भारी है ।
इन दोनों से बढ़कर मेरा, कोई और नहीं हितकारी है ॥
है उचित मुझे इस जीवन में इन दोनों की सेवा करना ।
इन दोनों के चरणों की रज सादर अपने शिर पर धरना ॥
सो जिन हाथों से दोनों के पद-कमल चापना लाज़िम है ।
क्या उन हाथों ही से उनके शिर भी उतारना लाज़िम है ॥
माधव, मुझको यह बतलाओ, यह किस जग की मर्यादा है ?
इस महापाप का नियम कहां किस धर्मशास्त्र ने बाँधा है ?

देते हों यदि शास्त्र भी यह अनुचित अधिकार ।
तब भी मुझको है नहीं यह पातक स्वीकार ॥

इस एक लोक की दर तो क्या, तीनों लोकों का राज मिले ।
और चाहे इन्द्रलोक का सा सम्पत्ति भोग, सुख-साज मिले ॥
तब भी मैं बड़े बु.ज़ुर्गों पर नहिं अपना हाथ उठाऊँगा ।
हे कृष्ण, कहो तुम लाख बार पर मैं नहिं शस्त्र चलाऊँगा ॥
इस महापाप के द्वारा जो सम्पत्ति भोग सुख पाना है ।
सो रुधिर मांस में सने हुए दूषित भोजन का खाना है ॥"

इतना कहकर रख दिए अर्जुन ने हथियार ।
छोड़दिया एक बार ही उसने युद्ध विचार ॥
अर्जुन, के उत्साह को देख इस तरह मन्द ।
अचरज में आकर लगे कहने यों ब्रजचन्द ॥

"अर्जुन, अब जब कि लड़ाई का सामान सामने ही सब है ।
तब तुम जो पीछे हटते हो यह बात बड़ी ही बेढब है ॥
सच्चे योद्धा, सच्चे क्षत्री-जब ऐसा अवसर पाते हैं ।
तब मन में अपने .ख़ुश होकर तन फूले नहीं समाते हैं ॥

लेकिन, खुश होना तो किसका, तुम हिम्मत बिल्कुल तोड़ रहे ।
क्षत्री योद्धा का धर्म भूल हथियार हाथ से छोड़ रहे ॥
यह कातरता, यह कायरता अर्जुन, तुममें क्यों कर आई ?
निज धर्म त्याग कर देने की यह कुमति कहां कैसे पाई ?
क्या, तुम्हें नहीं मालूम है—जो क्षत्री रण से भय खाता है ?
बदनामी उसको मिलती है, वह घोर नरक में जाता है ॥
इसलिए उठो अर्जुन, दृढ हो, कायरता तुम्हें न फबती है ।
बेमतलब की चिन्ता न करो, चिन्ता सब मति-गति हरती है॥"

अर्जुन ऐसे बैन सुन बोला तज कर धीर ।
"कृष्ण, कहूं मैं किस तरह, अपने मन की पीर ॥

जिनके जीवित रहने से मैं निज जीवन धन्य मानता हूं ।
जो रहे दयालु सदा मुझपर, जिनको मैं हितू जानता हूं ॥
वेही सब सम्मुख आये हैं मर जाने को मिट जाने को ।
तब बोलो, कैसे हाथ उठे—उनपर हथियार उठाने को ॥
यद्यपि कहता है क्षात्र-धर्म आगे बढ़ दो दो हाथ करूँ ।
सम्मुख मेरे जो भी आवे, उसको मारूँ या आप मरूँ ॥
लेकिन, बस, धनुष उठाते ही रोमाञ्च मुझे हो आता है ।
मन की कुछ ऐसी हालत है—बिल्कुल ही बैठा जाता है ॥
बेढब द्विविधा में फँसे हुए व्याकुल होते हैं प्राण मेरे ।
जब सावधान ही चित्त नहीं तो क्या कर लेंगे बाण मेरे ॥

गाना



हे कृष्ण, क्या बताऊँ मुश्किल पड़ी हुई है ।
है युद्ध सामने पर, हिम्मत छुटी हुई है ॥

जिस ओर दृष्टि पहुँची, उस ओर ही यह देखा ।
अपने कुटुम्बियों की सेना खड़ी हुई है ॥
हथियार छोड़ दूं या सम्बन्धियों को मारूँ ।
कुछ भी समझ न पड़ता, उलझन पड़ी हुई है ।।
क्षत्री के वास्ते है—जो पुण्य युद्ध करना ।
उसमें ही पाप की अब बहुत मिली हुई है ॥
झंझट को छोड़ जाऊँ, धूनी कहीं रमालूँ ।
बस एक बात यह ही मन में ठनी हुई है ॥"

—:०:—

पाया अर्जुन को जभी, इस प्रकार बेचैन ।
वासुदेव गम्भीर हो, बोले ऐसे वैन ॥

"अर्जुन, मुझको विश्वास न था, तुम यों व्याकुल होजाओगे ।
अपना कर्तव्य कर्म, तजकर यों नासमझी दिखलाओगे ॥
जो इसी तरह क्षत्री सारे, डर जाया करें बुराई से ।
रिश्तेदारों को देख-देख, हट जाया करें लड़ाई से ॥
तो फिर धीरे धीरे जग से, मिट जाय युद्ध-विद्या सारी ।
रह जाँय नाम भर के क्षत्री, कोई न होय फिर धनु-धारी ॥
योद्धा और योद्धापन दोनों जिस दिन नपैद हो जायेंगे ।
उस दिन अन्यायी दुष्ट पुरुष मनमानी कर दिखलायेंगे ॥
इस युद्ध-कला के ही बल पर राजा करते हैं राज सदा ।
इस युद्ध-कला से ही बसता मर्यादित लोक-समाज सदा ॥
क्षत्री के बाणों के डर से संसार शान्ति से रहता है ।
जिससे कि अन्न, धन, वैभव का शुभ स्रोत सृष्टिमें बहता है ॥

[व्याख्यान—भगवान् यहां अर्जुन को शस्त्र-विद्या और शस्त्रधारी योद्धा का महत्त्व समझाते हैं। नीतिकारों ने कहा है कि—

"शस्त्रविद्या स्वभावेन, सर्वाभ्योऽस्ति महीयसी ।
शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे, शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते ॥"

अर्थात् हथियार धारण करके युद्ध करने की विद्या सभी विद्याओं से श्रेष्ठ है। क्योंकि हथियार के बल से जब एक जाति अपने आपको सुरक्षित बना लेती है तब कहीं उसे शास्त्रों की चिन्ता अर्थात् विद्या पढ़ने पढ़ाने के लिए बेफ़िक्री और फ़ुर्सत होती है]

इसलिए युद्धको घृणित समझ तुमको जो ग्लानि होरही है ।
सो सच पूछो तो हे अर्जुन, एक बेढब हानि होरही है ॥
अर्थात्–भेद यह है देखो, समझो, समझाये देता हूं ।
क्यों है आवश्यक युद्ध तुम्हें, यह तत्त्व बताये देता हूं ॥
तुम यह तो ख़ूब जानते हो--कौरव बेहद अन्यायी हैं ।
वे जितने प्रभुताशाली हैं, उतने ही सङ्कटदायी हैं ॥

दिये उन्होंने हैं तुम्हें--कितने ही सन्ताप ।
भूलगये क्या इस समय–तुम वह कष्ट-कलाप ?

जब तुम पाँचों पांडव मिलकर बचपन में खेल रचाते थे ।
तब यह कौरव ही तुम सबको क्या क्या न क्लेश पहुँचाते थे ॥
उस दिन को याद करो अर्जुन, क्या क्रूर उपाय रचाया था ।
जब भीमसेन को धोखे से इन सबने ज़हर पिलाया था ॥
वह तो यह कहो कि ईश्वर ने कुछ ऐसी महिमा दिखलाई ।
जिससे कि भीम के प्राणों पर रत्तीभर आँच नहीं आई ॥
पर, कुटिल कौरवों ने फिर भी उत्पात नया एक खड़ा किया ।
लाक्षागृह में जा रहने को तुम सब लोगों को विदा किया ॥
उस भीषण लाक्षागृह से जब जैसे तैसे कर प्रान बचा ।
तब मरजाने से भी बदतर, दुष्टों ने दुखद विधान रचा ॥

अर्थात्–पाण्डवों से पहले सर्वस्व जुए में हथियाया।
फिर चीर द्रौपदी का खींचा, अपमानित उसको करवाया॥
ओह ! अबला की दुखभरी टेर जिस समय कान में आई है।
तब कुछ मत पूछो, कैसी कुछ तबियत मेरी घबराई है॥
क्षण भर मुझसे रुकते न बना, जैसा बैठा था उठ आया।
और छिपे छिपे वह यत्न किया जो अङ्ग न उसका खुल पाया॥

भूली नहीं है द्रौपदी अबतक वह अपमान।
रहता है इस बात का निशिदिन उसको ध्यान॥

वह इस आशा में जीती है, मेरे पति युद्ध रचायेंगे।
अत्याचारी से अबला का बदला भरपूर चुकायेंगे॥
अबला ही नहीं आज सारा संसार प्रतीक्षा करता है।
अत्याचारी को दण्ड मिले, बस, यही कामना करता है॥
अवसर तो ऐसा प्राप्त हुआ, पर, रण से चित्त हटाते हो।
बाबाजी बनकर जंगल में जाने की बात सुनाते हो॥
अन्याय हुआ है जो तुम पर, वह बिलकुल भूले जाते हो।
अत्याचारी के हेतु एक निष्कंटक मार्ग बनाते हो॥
यह कार्य तुम्हारा वीरों के यश को कलुषित कर डालेगा।
इतना ही नहीं, सदा को वह एक निन्द्य कुरीति चला देगा॥
वह निन्द्य कुरीति यही तो है जो बदले लिए न जायेंगे।
तो आगे को जो अन्यायी होंगे वे भय नहिं खायेंगे॥
श्रीरामचन्द्र ने सतयुग में यह अपना धर्म विचारा था।
बस, इसीलिए तो रावण से पण्डित ब्राह्मण को मारा था॥
यदि रामचन्द्र चुपचाप कहीं अन्याय उस समय सह जाते।
तो और लोग भी आगे को वैसे ही चुप रह रह जाते॥

सारे शास्त्रों ने ब्राह्मण का वध करना पाप बताया है ।
ब्राह्मणघाती को महाघोर पातकी पतित ठहराया है ॥
लेकिन, यह भी शास्त्रों ही में कह दिया गया है समझाकर ।
सहता है जो अन्याय पुरुष, वह है अन्यायी से बदतर ॥
श्रीरामचन्द्र के कृत्यों का अबतक दुनिया गुण गाती है ।
आदर-समेत अब भी उनके चरणों में शीश नवाती है ॥
लेकिन, तुम अपनी कहो तुम्हें दुनिया किस तरह पुकारेगी ।
कायर, कापुरुष, कदाचारी, कह कहकर नित धिक्कारेगी ॥

इसीलिए यह है उचित, अर्जुन, करो उपाय ।
कायर होकर मत सहो--दुराचार अन्याय ॥
तुम भी हो जब राज्य के आधे हिस्सेदार ।
किस निमित्त हो छोड़ते फिर अपना अधिकार ॥
माना, तुमको है नहीं राजपाट से प्रेम ।
किन्तु, चाहिए तो सभी घर को योगक्षेम ॥"

अर्जुन बोला-"गोविन्द, मुझे अब भी सन्तोष नहीं होता ।
माना, अन्यायी दुष्टों से लड़ने में दोष नहीं होता ॥
दुर्योधन से इसलिए मुझे लड़ने में बिल्कुल सोच नहीं ।
उसके संगियों साथियों से भिड़ने में कुछ संकोच नहीं ॥
पर, भीष्म पितामह स्वयं उधर आचार्य द्रोण को लिए हुए ।
जब खड़े हुए हैं शस्त्र बाँध संकल्प युद्ध का किए हुए ॥
तब दुर्योधन के साथ--साथ उन पर गांडीव उठाऊँ मैं ।
यह किस प्रकार से सम्भव है ? यह हृदय कहां से लाऊँ मैं ॥
जो वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध सज्जन, सुन्दर सुखदायी हैं ।
वे दुर्योधन ही की नाईं कैसे कहदूँ अन्यायी हैं ?"

अर्जुन को अब भी रहा बाक़ी जब सन्देह ।
इस प्रकार भगवान् तब बोले सहित सनेह ॥

"अर्जुन, यह भीष्म पितामह की चिन्ता जो तुमको व्यापी है ।
सो सोच समझकर देखो तो, वह चिन्ता यहां वृथा सी है ॥
पाण्डव तो पहले ही उनसे आज्ञा सप्रेम ले चुके हैं ।
आज्ञा के साथ साथ जय की आशिष् वे स्वयं दे चुके हैं ॥
यदि कहीं तुम्हारे लड़ने में कुछ दोष समझते वे अर्जुन !
तब यह तो ज़रा विचार करो आशिष् वे क्यों देते अर्जुन ?
तुम वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध जब मन में उन्हें समझते हो ।
तब फिर उनकी आज्ञा पर भी क्यों रण के लिए झिझकते हो ?
इसके अतिरिक्त बात यह है, वे स्वयं युद्ध में आये हैं ।
तलवार, तीर, बरछी, भाले, सब शस्त्र युद्ध में लाये हैं ॥
इन शस्त्रों का वे लड़ने में निश्चय जोहर दिखलायेंगे ।
तुम उनके सम्मुख जाओगे तो तुम पर तीर चलायेंगे ॥
जब दादा अपने पोते पर निर्भय हैं शस्त्र चलाने में ।
तब पोते को क्या शंका है दादा से युद्ध रचाने में ?

युद्ध-भूमि में हैं सभी योद्धा एक समान ।
नाते रिश्ते का नहीं रण में होता ध्यान ॥

इसलिए भेद यह है इसमें, जो अब मैं तुम्हें बताता हूँ ।
आये हैं भीष्म युद्ध में क्यों, यह तत्त्व तुम्हें समझाता हूँ ॥
श्रीभीष्म पितामह ने जो अब दुर्योधन को अपनाया है ।
तो क्या आखिर दुर्योधन को निर्दोष उन्होंने पाया है ?
नहिं, नहिं, ऐसी कुछ बात नहीं, जो बात है वह इतनी सी है ।
अबतक दुर्योधन ने उनकी नाना प्रकार सेवा की है ॥

दुर्योधन के हाथों अबतक सत्कार उन्होंने पाया है ।
दुर्योधन ही का आज तलक नित अन्न उन्होंने खाया है ॥
जो देह उन्होंने पाली है दुर्योधन का भोजन खाकर ।
वह देह समर्पण करते हैं वे अब दुर्योधन को लाकर ॥
पापी का भोजन पा करके वे मन में ग्लानि भर रहे हैं ।
इसलिए युद्ध करने आकर वे प्रायश्चित्त कर रहे हैं ॥
वे खूब जानते हैं पाण्डव लड़ रहे धर्म को लिए हुए ।
इसलिए हृदय से वे तुम पर हैं भाव प्रीति का किए हुए ॥
उनको यह निश्चय है रण में पाण्डव पाँचों जय पायेंगे ।
और वे शरीर के बन्धन से यों अनायास छुट जायेंगे ॥
उनको योद्धा ही मत समझो, वे पूर्ण शास्त्र-ज्ञाता भी हैं ।
नीतिज्ञ भी हैं धर्मज्ञ भी हैं और योग-तत्त्व-द्रष्टा भी हैं ॥
मालूम उन्हें वह है विद्या, जिससे कि ताप मिट जायेगा ।
वे कितना ही संग्राम करें, फिर भी न पाप लग पायेगा ॥"

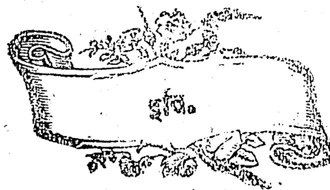
इस प्रकार के जब वचन बोले गोपीनाथ ।
अर्जुन ने पूछा तभी उत्कण्ठा के साथ ॥

"गोपाल, मुझे भी बतलादो, कैसी विद्या वह होती है ।
जो किए हुए सब कर्मों का क्षण भर में कल्मष खोती है ॥
जो बात भीष्म से पण्डित को निश्शङ्क युद्ध में लाती है ।
वह बात जान लेने को अब तबियत मेरी अकुलाती है ॥
मैं विनय तुम्हारी करता हूं, गोविन्द, मेरा उपकार करो ।
मैं जिस उलझन में उलझा हूँ, उससे मेरा उद्धार करो ॥

गाना

कीजिए अब मेरा उद्धार ।

यदु-कुल-तिलक ललाम श्याम, करुणानिधि-करुणागार ॥ कीजिए० ॥
अन्धकार में है मति मेरी, समझ पड़े नहिं सार ।
सरल ज्ञान-दीपक को करिए, प्रचुर प्रभा-विस्तार ॥ कीजिए० ॥
झँझरी नैया है विवेक की-भ्रम के पारावार ।
तत्त्व-ज्ञान का डाँड लगे तब हो संकट से पार ॥ कीजिए० ॥
शरण तुम्हारी आया हूँ मैं सब प्रकार लाचार ।
अपना जान बांह गह लीजे, हो मुझ पर उपकार ॥ कीजिए० ॥



नोट—इससे आगे की कथा दूसरे भाग 'आत्मा की अमरता' नामक पुस्तक में पढ़िये ।

नक़ली किताबों से बचिये

हमारी रामायण और हमारे नाटकों का काफ़ी प्रचार देखकर लोगों ने उसी रंग और रूप की नक़ली किताबें छाप छापकर प्रकाशित करदी हैं। नक़्क़ालों की कई बरस की कोशिश का नतीजा यह है कि बाज़ार में नक़ली किताबों की भरमार है। यह नक़ली किताब)॥ में बुक्सेलर को दी जाती है, जिसे बुक्सेलर -) या =) या ≡) में बेचकर फ़ायदा उठाता है और इस प्रकार ग्राहक को धोखा दिया जाता है। ग्राहक जब ऐसी किताब को घर ले जाता है तो पछताता है। ग्राहक का ऐसी धोखेबाज़ी से बचाने के लिये अब हम अपनी हर एक किताब के ऊपर अपनी तस्वीर देने लगे हैं, जैसी कि इस किताब पर आप देख रहे हैं। अब आइन्दा से आप धोखा न खाइयेगा—

ध्यान रहे—

जिन किताबों पर—"राधेश्याम" या—"राधेश्याम शागिर्द" या "तर्ज़—राधेश्याम" छपा रहता है, वह हमारे यहाँ की नहीं हैं। हमारे यहाँ की किताबों पर हमारे यह दस्तख़त भी रहते हैं। इन्हें पहचान लीजिये—

राधेश्याम

भवदीय—

राधेश्याम कथावाचक

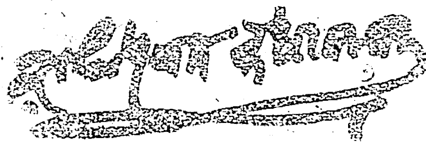
मालिक—श्रीराधेश्याम पुस्तकालय व प्रेस, बरेली।

श्रीमद्भगवद्गीता-संख्या ६

आत्मा की अमरता



प्रकाशक—
नेपाल गवर्नमेण्ट से "कथावाचस्पति" की पदवीप्राप्त—
कीर्तन-कला-निधि, काव्य-कला-भूषण, श्रीहरि-कथा-विशारद, कविरत्न-



अध्यक्ष—श्रीराधेश्याम-पुस्तकालय, बरेली।

मूल्य ।)॥ आने

पं० राधेश्यामजी कथिरत्न लिखित नवीन कृति

कृष्णायन

जन्माष्टमी ।=) नन्द-महोत्सव ।=)
कमलीवाला कन्हैया ।=) गिरिवरधारी ।=)
रासरहस्य ।=) कंस-वध ।=)
नन्द नन्दन-वसुदेव-नन्दन ।=)

सम्पूर्ण सात भाग एक सुन्दर जिल्द में छः आने अधिक देने पर अर्थात् तीन रुपए में मिलेंगे। डाक महसूल ।=) अलग

रुक्मिणी-मंगल

(राधेश्याम रामायण की तर्ज में)

रुक्मिणी-जन्म ।=)
रुक्मिणी का कृष्ण प्रेम ।=)
रुक्मिणी की सगाई ।=)
रुक्मिणी का पत्र-लेखन ।=)
रुक्मिणी का गिरिजा-पूजन ।=)
रुक्मिणी का भ्रातृस्नेह ।=)
रुक्मिणी-का विवाह ।=)

सम्पूर्ण सातों भाग एक सुन्दर जिल्द में छै आने अधिक देनेपर अर्थात तीन रुपए में मिलेंगे। डाक महसूल ।=) अलग

श्रीमद्भगवद्गीता

(राधेश्याम रामायण की तर्ज में)

अर्जुनमोह ।)॥ विराट्रूप-दर्शन ।)॥
आत्मा की अमरता ।)॥ जीव-ब्रह्म-विवेक ।)॥
कर्म-योग ।)॥ अर्जुन का समाधान ।)॥

नोट—सम्पूर्ण ६ भाग एक सुन्दर जिल्द में ।=) अधिक देने पर, अर्थात् २) में मिलेंगे, तथा जिल्ददार गुटका १॥) रु० में मिलेगा। डाक महसूल गुटका ।=) अलग अलग भाग पर ।=)

दुर्गा चरित्र

(राधेश्याम रामायण की तर्ज में

महिषासुर-बध ।=)
शुम्भ का उत्पात ।=)
चामुण्डा का पराक्रम ।=)
रक्त-बीज की लड़ाई ।=)
शुम्भ और निशुम्भ का बध ।=)

नोट-सम्पूर्ण ५ भाग एक सुन्दर जिल्द में छै आने अधिक देने पर अर्थात् २।) में मिलेंगे, तथा जिल्ददार गुटका १।) में मिलेगा। डाक महसूल गुटका ।= अलग अलग भाग पर ।=)

महाभारत

(राधेश्याम रामायण की तर्ज में)

भीष्म-प्रतिज्ञा ।=)
भीष्म-पराक्रम ।=)
पाण्डव-जन्म ।=)
पाण्डवों का बाल्य-काल ।=)
पाण्डवों की शस्त्र-परीक्षा ।=
लाक्षागृह ।=)
बक-संहार ।=)
द्रौपदी-विवाह ।=)
सुभद्रा-हरण ।=)
राजसूय-यज्ञ ।=)
द्रौपदी-वस्त्र-हरण ।=)
किरातार्जुन-युद्ध ।=)
यक्ष-सम्वाद ।=)
कीचक-बध ।=)
अभिमन्यु-विवाह ।=)

अन्य कथायें

(राधेश्याम रामायण की तर्ज में-)

नरसी की हुण्डी ।)॥
श्रीसत्यनारायण की कथा ।=
प्रह्लाद-चरित्र ।=)
ध्रुव-चरित्र ।=)
सुदामा-चरित्र ।=)
मोरध्वज-चरित्र ।=)
भर्तृहरि-चरित्र ।=)
महाराणा प्रतापसिंह ।=)
सत्यवादी हरिश्चन्द्र ।=
सावित्री-सत्यवान् ।=)
मीराबाई ।=)
भक्त-अम्बरीष ।=)
अभिमन्यु की वीरता ।=)
गुरु गोविन्द सिंह ।=)
गुरु नानक ।=)
बुद्ध-चरित्र ।=)
द्रौपदीलीला ।)॥
महाराजा दिलीप ।॥
शिव चरित्र (४ भाग) १॥)
महर्षि चरित्र (४ भाग) १॥)

 पता—श्रीराधेश्याम-पुस्तकालय, बरेली।



संख्या—२

* श्रीमद्भगवद्गीता *

लेखक—
पं० रामनारायण पाठक

आत्मा की अमरता

प्रकाशक—
नेपाल गवर्नमेण्ट से "कथावाचस्पति" की पदवीप्राप्त—
कीर्तन-कला-निधि, काव्य-कला-भूषण, श्रीहरि-कथा-विशारद, कविरत्न—
पं० राधेश्याम कथावाचक
अध्यक्ष—



दसवीं बार १०००] सन १९४६ ई० [मूल्य साढ़े चार आने

प्रिंटर—पं० रामनारायण पाठक, श्रीराधेश्याम-प्रेस, बरेली।

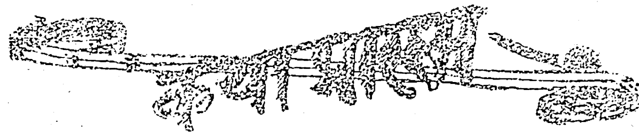
❀ ॐ ❀



प्रार्थना

मन-भवन में मेरे भगवन्! आप क्यों आते नहीं ?
ताप और सन्ताप मेरे मेट क्यों जाते नहीं ?
है सुना मैंने कि तुम शरणागतों के त्राण हो।
मैं शरण आया हूँ क्यों मुझको भी अपनाते नहीं ?
आप अपने पुण्य-बल से ही तरे होते जो सब।
विश्व के जन आपकी यों कीर्ति फिर गाते नहीं॥
याद हैं अबतक भी वृन्दाबन के वह सारे चरित्र।
अपने भक्तों से क्या, अब वह आपके नाते नहीं ?
आये हो नर-देह लेकर भूमि पर जब बार-बार।
आज "निर्गुण" से सगुण, क्यों आप हो पाते नहीं ?





अर्जुन यों करके विनय दोनों कर निज जोर—
लगा देखने एकटक कृष्णचन्द्र की ओर ॥
अपना प्रियजन जानकर प्रेम-भाव के साथ—
धीरे-धीरे यों—लगे कहने गोकुलनाथ ॥

"अर्जुन, इस समय तुम्हें सचमुच एक मिथ्या भ्रम होआया है ।
उस मिथ्या भ्रम के ही कारण तुमने मिथ्या दुख पाया है ॥
तुम कहते हो मैं अपनों पर किस तरह कठोर प्रहार करूँ ?
किस तरह पितामह का—गुरु का—सेना-समेत संहार करूँ ?
इससे यह ज़ाहिर है—तुमको अपनों का मोह सताता है !
'घरवाले सब मरजायेंगे', यह क्लेश प्रबल होआता है ॥
जिन बातों का है शोक तुम्हें, ज्ञानी उनसे नहिं डरते हैं ।
वे कभी किसी के मरने और जीने का शोक न करते हैं ॥
जीने और मरने का जैसा—यह पड़ा गले में फन्दा है
सो तीसों दिन होनेवाला मिथ्या माया का धन्धा है ॥
मैं-तुम—और यह सारे योद्धा जो यहाँ युद्ध में आये हैं—
सो अब से पहले बार बार होते और मिटते आये हैं ॥
आगे भी इसी तरह यह सब पैदा होंगे मिटजायेंगे ।
जबतक जग है तबतक जग में यह जन्म-मरण भी पायेंगे ॥

पैदाहोने और मिटने का यह चक्कर योंही चलता है ।
क्या जानें, अर्जुन, क्यों तुमको होती इससे व्याकुलता है ?

एक बात है और भी उसपर करो विचार ।
हाड़-मांस की देह यह होय-जाय बहु बार ॥

पृथ्वी, अकाश, जल, तेज, वायु, यह पाँच तत्त्व कहलाते हैं ।
यह पाँच तत्त्व ही मिल-जुलकर प्राणी की देह बनाते हैं ॥
इस पाँच तत्त्व की देह-बीच चैतन्य पुरुष एक रहता है ।
यह पुरुष अंश ईश्वर का है, सिद्धान्त-शास्त्र यह कहता है ॥
बस, पाँच तत्व की बनी देह बनती है और मिटजाती है ।
यह ईश्वर अंश वस्तु वह है—जो अमर-अमिट कहलाती है—
तो जो पदार्थ यों बार-बार बनता है और मिट जाता है ।
उसके निमित्त ज्ञानी कोई नहिं कभी कष्ट कुछ पाता है ॥"

अर्जुन बोला—'आपका कथन सत्य ब्रजचन्द ।
लेकिन फिर भी चित्त यह हुआ नहीं निर्द्वन्द ॥
प्रिय लोगों के प्राण हों—आँखों-आगे नष्ट ।
कहाँ तलक फिर भी न हो अपने मन को कष्ट ?"

यह सुनकर बोले मधुसूदन—"मन क्लेश-कष्ट जो पाता है ।
वह मन का क्लेश-कष्ट अर्जुन, माया से होता-जाता है ॥
यह हाथ-पैर और आँख-नाक—जो चीज़ें देखी जाती हैं ।
ये चीज़ें गिनती में दस हैं, इन्द्रियाँ दसों कहलाती हैं ॥
दुनिया की विविध वस्तुओं का होता इनसे सम्बन्ध जभी ।
आनन्द, शोक, सर्दी, गर्मी—होते बहु सुख और दुःख तभी ॥
यह सुख और दुःख नित्य होते और नित्य नष्ट होजाते हैं ।
जो इन सबको सहलेते हैं, वे उत्तम नर कहलाते हैं ॥

इन सुख और दुःखों का सहना जिस वीर पुरुष को आता है ।
बस, वह ही सच्चा ज्ञानी है, बस, वही अमृतफल पाता है ॥
तुम भी सुख और दुःख सब सहलो धरकर धीर ।
अर्जुन, उठ आगे बढ़ो, युद्ध करो बलवीर !
एक भेद और है उसको भी समझो-समझाता हूँ अर्जुन !
यह मृत्यु वास्तव में क्या है, यह गुर बतलाता हूँ अर्जुन !
मैं तुमसे अभी कहचुका हूँ, सिद्धान्त-शास्त्र यह कहता है ।
इस पाँच तत्व के चोले में चैतन्य पुरुष एक रहता है ॥
यह पुरुष देह में रहने के कारण-आत्मा कहलाता है ।
लेकिन परमात्मा से इसका-पूरा और पक्का नाता है ॥
परमात्मा जैसे अजर-अमर, आनन्दकन्द, सुखराशी है ।
यह आत्मा भी बस उसी तरह सच्चिदानन्द अविनाशी है ॥
अविनाशी होने से इसका उद्भव या नाश नहीं होता ।
यह देह नष्ट होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता ॥
परमात्मा के तुल्य है-आत्मा पूरणकाम ।
अज-अनन्त-अच्युत-अनघ और अकर्ता नाम ॥
यह आत्मा न तो स्वयं मरता—नहिं किसी से माराजाता है ।
इस जड़ शरीर में माया के चक्कर में पड़कर आता है ॥
जो कुछ कि इन्द्रियों का सुख-दुख इस जड़ शरीर में रहता है ।
उस सुख-दुख को भ्रम से आत्मा अपना ही सुख-दुख कहता है ॥
यदि यह भ्रम-भूल दूर करदे तो आत्मा फिर परमेश्वर है ।
जगदीश्वर है, अखिलेश्वर है, भुवनेश्वर है, भूतेश्वर है ॥
आत्मा ही बस देह में है पदार्थ एक नित्य ।
पञ्च तत्व की देह है—नश्वर और अनित्य ॥

जो शै अनित्य और नश्वर है; वह सदा नहीं रहपायेगी ।
हो आज या कि सौ बरस बाद; निश्चय विनष्ट होजायेगी ॥
जो चीज़ नष्ट होगी निश्चय, उसके निमित्त दुख पाना क्या ?
जो एक रोज़ मिटजायेगी, उससे यों मोह बढ़ाना क्या ?
यह देह वास्तव में अर्जुन, ऐसी धोखे की टट्टी है ।
है अभी भली और बनी हुई—और अभी-अभी फिर मट्टी है ॥
हाँ, आत्मा जो इस देह में है, वह ही नित रहनेवाला है ।
मिटजाय भले ही देह किन्तु वह कभी न मिटनेवाला है ॥
ज्यों पुरुष पुराने वस्त्र छोड़ नूतन पोशाक बदलता है—
त्यों आत्मा भी एक देह छोड़ दूसरी देह में चलता है ॥
यह अभी बताया है मैंने, यह आत्म सचमुच ईश्वर है ।
इसलिए ईश्वर के समान यह अच्युत है, जगदीश्वर है ॥
हथियार इसे नहिं काट सके, पावक नहिं इसे जला सकती ।
जल इसे नहीं तर कर सकता और हवा न इसे सुखा सकती ॥
यह नित्य और सर्वव्यापी; स्थिर-अचल, सनातन, पावन है ।
इन्द्रियाँ जिसे नहिं जान सकें यह वह अव्यक्त गुप्त धन है ॥
होता है इसको नहीं कोई कभी विकार ।
सारहीन जड़ देह में यही एक है सार ॥

गाना

देह है नाशवान् निस्सार, एक आत्मा है उसमें सार ।
पञ्च तत्त्व की देह तो हो-होकर मिटजाय ।
आत्मा ही वह वस्तु है जो कि न कभी नसाय ॥
यही कहते हैं शास्त्र पुकार; एक आत्मा है उसमें सार ॥
जब होना है देह का निश्चय एक दिन अन्त ।
उचित नहीं उसके लिए—दुख पाना अत्यन्त ॥
पण्डितों का है यही विचार; एक आत्मा है उसमें सार ॥

आत्मा मरता है नहीं; है वह अमर अनूप।
कहते हैं मुनिजन उसे—परब्रह्म का रूप॥
वृथा यह सारा हाहाकार, एक आत्मा है उसमें सार॥
आत्मा में और देह में है यह पूरा भेद।
ज्ञानी उसको जानकर मन नहिं धरते खेद॥
तत्त्व यह है सुख का आधार; एक आत्मा है उसमें सार॥

—:o:—

इस सारे वक्तव्य का अर्जुन, है यह अर्थ।
आत्मा की या देह की चिन्ता करना व्यर्थ॥

जब देह एक दिन मिटनी है; तब वह न सदा रहपायेगी।
वह अभी मिटे, या कभी मिटे—मिटकर मट्टी हो जायेगी॥
इस मिटनेवाली मट्टी की चिन्ता से कुछ उपकार नहीं।
इसके मिटजाने पर रोना ज्ञानी पुरुषों का कार नहीं॥
फिर यह भी एक नासमझी है—जो तुम कहकर समझाते हो।
इस मट्टी का तुम अपने ही हाथों से नाश बताते हो॥
जो स्वयं नाश होजायेगी, उसका तुम नाश क्या करोगे?
जो निश्चय एक दिन जायेगी, उसको कबतक धर पकड़ोगे?
अब रही बात एक आत्मा की सो वह मारे नहिं मरता है।
तुम बाण चलाओ कितने ही उसपर प्रभाव नहिं पड़ता है॥
इसलिए बताओ अब अर्जुन, लड़ना क्यों तुम्हें अखरता है?
तुम किसे मारते हो आखिर और क्या मारे से मरता है?"

अर्जुन कुछ करनेलगा—मन में सोच-विचार।
उसी समय फिर कृष्ण ने किया और विस्तार॥

बोले—"अर्जुन, हम क्षणभर को मानेलेते हैं इतना भी।
नश्वर शरीर की तरह यहाँ होती-मिटती है आत्मा भी॥

तब वही बात फिर कहना है, क्यों बेजा शोक किया जाये ?
जो वस्तु होय और मिटे नित्य उसके निमित्त क्यों दुख पाये ?
फिर कितना ही तुम यत्न करो; पर कुछ भी नहीं बसायेगी ।
जो चीज़ कि होनी-मिटनी है, वह होकर मिट ही जायेगी ॥
इसलिए शोक का त्याग करो, नहिं शोक ज्ञान का लक्षण है ।
वह पुरुष शोक नहिं करता है--जो ज्ञानी और विचक्षण है ॥
फिर यह भी तो सोचो मन में; साहस क्यों तुमने हारा है ?
जो युद्ध कर्म है क्षत्री का, वह ही बस धर्म तुम्हारा है ॥
क्षत्री के लिए युद्ध करना वैकुण्ठ-द्वार कहलाता है ।
क्षत्री को बड़े पुण्यफल से यह युद्ध कहीं मिलपाता है ॥

क्षत्री अपने धर्म को यदि छोड़े निश्शंक—
तो बस भूतल पर उसे--निश्चय मिले कलंक ॥

जितने योद्धा यहाँ आये हैं और युद्ध जिन्होंने साधा है ।
वे सब यह मन में समझेंगे- अर्जुन डरकर ही भागा है ॥
जो अबतक तुमसे डरते थे; कहते थे, अर्जुन योद्धा है ।
वे अब यह कहदेंगे खुलकर--अर्जुन कायर और बोदा है ॥
इस निन्दा के दुख से बढ़कर बोलो, जग में क्या दुख होगा ?
अर्जुन, बदनामी फैलगयी तो कहो तुम्हें क्या सुख होगा ?
बदनामी की कुछ बात न हो- यह लक्ष्य नीतिवानों का है ।
बदनामी से तो मौत भली--यह कथन बुद्धिमानों का है ॥
जो मारे गये युद्ध में तुम तो स्वर्गलोक को जाओगे—
और जीते तो इस पृथ्वी का सब राज-पाट सुख पाओगे ॥
सुख-दुख और हार-जीत यकसाँ मानो तो ताप नहीं होगा ।
इस समबुद्धी से युद्ध करो अर्जुन, तो पाप नहीं होगा ॥

[व्याख्यान—भगवान् ने अर्जुन को बतलाया कि शरीर तो नाश पानेवाली मट्टी है और आत्मा जो इसमें रहता है वह अमर है। दोनों के लिए शोक नहीं होना चाहिये। अन्त में भगवान् ने युद्ध करना अर्जुन का धर्म बतलाकर यह भी समझाया कि युद्ध से हटजाने से बदनामी होगी। बदनामी वास्तव में मरजाने के बराबर है। भगवान् ने कहा—"अर्जुन, तुम युद्ध छोड़कर हटजाने से वह हालत अपनी करलोगे जो मरने के बराबर है।" भगवान् अर्जुन को लड़ाने के लिए यह चाल चलते हों सो बात नहीं, बल्कि सर्वदा और सर्वत्र ही बुद्धिमानों ने बदनामी को मौत से बढ़कर दुःखदायी बताया है। त्रेता में महाराज रामचन्द्र ने बदनामी के ही कारण अपनी उस प्राणवल्लभा पत्नी को बन में भेजदिया था, जिसके बिना वे अपना जीवन व्यर्थ समझते थे। महाकवि कालिदास ने महाराज रामचन्द्र के इस कार्य की आलोचना करते हुए कहा है:—

अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थात् ,
यशोधनानां हि यशो गरीयः ।

अर्थात्—जो यशोधनी हैं—यश ही जिनका सर्वस्व धन है—वे यश को अपनी इन्द्रियों की सुख-सामग्री तो क्या, प्राणों से भी बढ़कर मानते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी इसी भाव को यूँ प्रकट किया है:—

"सम्भावित कहँ अपयश लाहू ।
कोट मरणसम दारुण दाहू ॥"

युद्ध में अपने सम्बन्धियों और कुटुम्बियों को देखकर अर्जुन के हृदय में कष्ट उत्पन्न हुआ था। उस कष्ट से व्याकुल होकर उसने युद्ध छड़देने और वैराग्य लेलेने की इच्छा प्रकट की थी। वह इच्छा ठीक उसी तरह की थी जैसी कि सांख्यशास्त्र के माननेवाले विद्वानों की होती है। सांख्यशास्त्र के माननेवाले कहते हैं कि मनुष्य जब संसार में रहेगा तो कुछ न कुछ कर्म करने ही पड़ेंगे। और जब वह कुछ न कुछ कर्म करेगा ही तब उसे कुछ न कुछ फल भी उन कर्मों का भोगना पड़ेगा। इसलिए उचित यह है कि कर्म करे ही नहीं। संसार छोड़कर जंगल में चलाजाय तो कर्म अपने आप छूट जायेंगे, और जब कर्म ही न होंगे तो उनका फल भी न भोगना पड़ेगा। अर्जुन के मन में सांख्यशास्त्रवालों की बात बैठी हुई थी, इसलिए भगवान् ने सांख्यशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार अबतक यह बतलाया कि आत्मा किसी तरह नहीं मरता और शरीर हर तरह से नाश होनेवाला है, इसलिए किसी की मृत्यु का शोक करना व्यर्थ है। अब आगे भगवान् अर्जुन को यह बतलाते हैं कि किसी तरह युद्ध में शत्रु का नाश करने पर भी हत्या का पाप नहीं होता।]

अबतक मैंने हैं किये—जितने प्रकट विचार ।
अर्जुन, हैं वे उक्तियाँ-सांख्यशास्त्र-अनुसार ॥
मतलब उनका है यही होय न ज्ञान-विहीन ।
कभी किसी की मृत्यु पर करे न चित्त मलीन ॥

अब वह उपाय बतलाता हूँ, जिससे विषाद मिट जाता है ।
जो चाहे कर्म मनुष्य करे, पर, फल उसका नहिं पाता है ॥
अर्जुन, यह .खूब समझलो तुम—जितने भी कर्म कहाते हैं ।
वे सिर्फ़ किए जाने से ही नहिं हानि-लाभ पहुँचाते हैं ॥
कारण यह है—इस दुनिया में जो चीज़ कर्म कहलाती है ।
वह चीज़ अगर सच पूछो तो बिल्कुल जड़ मानीजाती है ॥
बिल्कुल जड़ है वह इसीलिए सुख-दुःख नहीं कुछ पहुँचाती ।
वह स्वयं विश्व में किसी समय नहिं भली-बुरी मानीजाती ॥
अब उसके करने से प्राणी जो भला-बुरा फल पाता है ।
वह भला बुरा फल भली-बुरी बुद्धी से होता-जाता है ॥
यदि भली बुद्धि से कियेजायँ तो कर्म भले फल देते हैं ।
यदि बुरी बुद्धि से कियेजायँ तो वही बुरे फल देते हैं ॥
लेकिन, यदि बुद्धी भली-बुरी कुछ न हो तो मन निर्मल होगा ।
कैसा भी कर्म मनुष्य करे, कुछ कभी न उसका फल होगा ॥

बुद्धी के ही दोष से होती सदा झमेल ।
कर्मों का फल भोग है—बुद्धी का ही खेल ॥

तात्पर्य यही है कहने का—इस बुद्धी को साधाजाये ।
वह निर्मल और एकाग्र बने; ऐसा कुछ यत्न कियाजाये ॥
इस बुद्धी को जो चीज़ सदा बहकाती और फुसलाती है ।
वह चीज़ 'वासना' है मन की और 'इच्छा' भी कहलाती है ॥

इस इच्छा के वश विवश बुद्धि कठपुतली होकर रहती है ।
इच्छा जो वायु बहाती है, वह वायु बुद्धि में बहती है ॥
इच्छा पहले सुख पाने का लालच उत्पन्न कराती है ।
तब बुद्धी उस सुख के निमित्त कुछ न कुछ यत्न रचवाती है ॥
इच्छा मनुष्य से कहती है--वह काम करो जो द्रव्य मिले ।
तो बुद्धी सम्मति देती है—बस यज्ञ करो तो द्रव्य मिले ॥
इच्छा मनुष्य से कहती है-वह कार्य करो जो पुत्र मिले—
तो बुद्धी सम्मति देती है बस यज्ञ करो तो पुत्र मिले ॥
इच्छा मनुष्य से कहती है—वह काम करो जो स्वर्ग मिले—
तो बुद्धी सम्मति देती है बस यज्ञ करो तो स्वर्ग मिले ॥
यों कभी द्रव्य और कभी पुत्र और कभी स्वर्ग की इच्छा है ।
बुद्धी को इन इच्छाओं ने बेहद विचलित कर रक्खा है ॥
इच्छाओं के सन्तोष-हेतु बुद्धी बहु कर्म कराती है ।
सब आयु मनुज की इसी तरह कर्मों में क्षय होजाती है ॥
इच्छाओं के वश किएहुए—यह कर्म त्रिविध फल देते हैं ।
और इन्हीं फलों के भोग हेतु नर जन्म विविधविध लेते हैं ॥"

वासुदेव के वाक्य यह सुनकर भले प्रकार ।
अर्जुन यों कहनेलगा होकर चकित अपार ॥
"यज्ञ आदि जब शास्त्र में कहे सही कर्तव्य ।
कृष्ण, कहो क्या छोड़दे मनुज वही कर्तव्य ?
है अद्भुत यह आपका नँदनन्दन, आदेश ।
मिलता जिससे यज्ञ की निन्दा का उपदेश ॥"

यह सुनकर कहनेलगे कृष्ण—'कर्तव्य नहीं छुड़वाता हूँ ।
अर्जुन, यज्ञों की निन्दा का उपदेश नहीं बतलाता हूँ ॥

मैं तो बस इतना कहता हूँ–जो यज्ञ मनुष्य रचाते हैं ।
उन यज्ञों के फल की इच्छा पहले मन में ले आते हैं ॥
फल की इच्छा रखके मन में जो यज्ञ रचायाजाता है ।
वह यज्ञ कर्म है मतलब का; इसलिए निकृष्ट कहाता है ॥
मतलब के यज्ञ रचाने का नहिं उत्तम शास्त्र समर्थक है ।
मतलब से यज्ञों की रचना अर्जुन, इसलिए निरर्थक है ॥
कारण यह है–इन यज्ञों से जो सुख भी प्राणी पाते हैं ।
वे सारे सुख माया के हैं–जो होते और मिटजाते हैं ॥
माया के सुख की झंझट में ज्योंही मनुष्य फँस जाता है ।
तब लख चौरासी चोलों में बारी से जाता-आता है ॥
योंही चक्कर बनजाता है–दुनिया में आने-जाने का ।
आत्मा को कभी नहीं मिलता संयोग मोक्ष के पाने का ॥

अर्जुन, इतनी बात मैं करता हूँ स्वीकार ।
वेदों में है यज्ञ का वर्णन और विस्तार ॥

जो यज्ञशास्त्र के पण्डित हैं–वे यज्ञों के गुण गाते हैं ।
यज्ञों का करना ही जग में सर्वोपरि धर्म बताते हैं ॥
लेकिन सुख-सम्पत् के निमित्त वे यज्ञ रचायाकरते हैं ।
जो यज्ञ कभी करते उसके फल को ललचायाकरते हैं ॥
बस, नानाविध फल पाने को नानाविध यज्ञ हुआकरते ।
वे रोज़-रोज़ इन यज्ञों में आसक्त-प्रसक्त रहाकरते ॥
उन यज्ञशास्त्रियों की बुद्धी थिर कभी नहीं रहपाती है ।
है कभी इधर, और कभी उधर, बस इधर-उधर मँडराती है ॥
यद्यपि यह माना वे अपने इन यज्ञों का फल पाते हैं ।
धन-धान्य, इष्ट-सन्तान, स्वर्ग उनको निश्चय मिलजाते हैं ॥

पर जब उनके यज्ञों का फल पूरा समाप्त होजाता है ।
तब लौट-पलट भवसागर में बेड़ा उनका फिर आता है ॥
वेदों में यज्ञ बताया है तो यज्ञ अवश्य कियाजाये ।
पर, फल पाने की इच्छा को बिल्कुल ही त्याग दियाजाये ॥
यदि यज्ञ-शास्त्री यज्ञों के फल की इच्छा न करें मन में—
तो कभी न फँसने पायें वे उन यज्ञों के फल-बन्धन में ॥

फल-इच्छा से जिस तरह यज्ञों का फल होय ।
उसी तरह इच्छा-विवश कर्मों का फल होय ॥

जिस तरह कि फल की चाह छोड़ यज्ञों का करना अच्छा है ।
बस, उसी तरह फल बेचाहे कर्मों का करना अच्छा है ॥
फल पाने की इच्छा तजकर जो कर्म रचायेजायेंगे ।
वे कर्म मनुज की बुद्धी को चंचल नहिं करनेपायेंगे ॥
चंचल न होयगी बुद्धी जब तब उदासीन होजायेगी ।
जो कार्य किये भी जायेंगे, उनमें नहिं फँसनेपायेगी ॥
जब कर्मों में नहिं फँसे बुद्धि तब कर्म नहीं कुछ फल देता ।
अर्जुन, फल से बचकर प्राणी बस मोक्षधाम को चलदेता ॥
कर्मों के फल से बचने का अर्जुन, यह यत्न निराला है ।
यह यत्न कर्म का सारा फल करदेय भस्म वह ज्वाला है ॥
तुम भी अब यह ही यत्न करो और रण करने को बढ़जाओ ।
रण करने का फल क्या होगा, इसमें मत बुद्धी उलझाओ ॥
फल की इच्छा से जब रण में तुम बुद्धी नहीं फँसाओगे—
तो निश्चय जानो लड़कर भी कुछ पाप-पुण्य नहिं पाओगे ॥
यह .खूब याद रक्खो अर्जुन, तुम जो दुनिया में आये हो—
तो बस कर्मों के करने का अधिकार साथ में लाये हो ॥

अनुचित है कर्मों का करना—फल पाने की इच्छा करके ।
सब कर्मों के फल देने का अधिकार हाथ है ईश्वर के—
सो तुम तो केवल कर्म करो और फल जो हो उन कर्मों में ।
वह फल लेकर अर्पण करदो—अर्जुन, ईश्वर के चरणों में ॥
ईश्वर उस फल को प्रेम-सहित सब अपने ऊपर लेलेंगे ।
और तुम्हें कर्म-फल बन्धन से बिल्कुल छुटकारा देदेंगे ॥

कर्मों के फल की न हो इच्छा का जो रोग ।
अर्जुन, तब मिलता नहीं कर्मों का फल-भोग ॥

अबतक जो कुछ समझाया है, वह फिर समझाये देता हूँ ।
अर्जुन, थोड़े से शब्दों में मतलब दोहराये देता हूँ ॥
हैं कर्म जगत् में जितने भी वे स्वयं न कुछ फल पहुँचाते ।
करनेवालों की बुद्धी हो—जैसी, वैसा वे फल पाते ॥
कर्मों के फल से बचना हो तो बुद्धी नर वश में लाये ।
जिससे वह बुद्धि कर्म-फल को पाने के हेतु न ललचाये ॥
कर्मों के फल की ललक जभी बिल्कुल जड़ से मिटजायेगी ।
बस, तभी बुद्धि में निश्चलता, दृढ़ता और समता आयेगी ॥
जब बुद्धी सम होजायेगी तब कर्म जो कियाजायेगा ।
प्राणी को जग का सुख और दुख सब एकी-सा दिखलायेगा ॥
जब यह हालत होजायेगी तब कर्म जो कियाजायेगा ।
उसका फल करनेवाले के सिर पर न कभी भी आयेगा ॥
कर्मों के फल की चाह छोड़ जो बुद्धी बश में लाते हैं ।
वे पुरुष कर्म करने पर भी कर्मों का फल नहिं पाते हैं ॥

बुद्धी का है साधना ऐसा सुघर उपाय ।
कर्म करे और कर्म के फल से भी छुट जाय ॥

अर्जुन, इस समय तुम्हारी बस एक बुद्धि मलीन होरही है ।
वह कर्मों की फल-इच्छा के बिल्कुल आधीन होरही है ॥
कर्मों के फल की इच्छा से अब उसे हटालाओ अर्जुन !
करलो उसको एकाग्र अभी और योगी बनजाओ अर्जुन !"

बोलउठा अर्जुन तभी—"यह तो कहिये तात !
अभी कहा जो आपने—'योगी सो क्या बात ?"

उत्तर में बोले कृष्ण—"सुनो अर्जुन, योगी वह होता है—
जो जग के सोने पर जगता, जग के जगने पर सोता है ॥
अर्थात् जगत् के लिए चीज़ जो व्यर्थ समझ में आती है ।
वह चीज़ लाभदायक-अच्छी योगी के लिए दिखाती है ॥
जिस तरह इस समय यहाँ तुम्हें यह युद्ध नहीं मन को भाता ।
यदि योगी होता तो अर्जुन, लड़ने में एकदम लगजाता ॥
योगी मन की इच्छाओं को इस तरह दबाये रहता है ।
जैसे लगाम से घुड़सवार घोड़े को नबाये रहता है ॥
इससे योगी की इच्छाएं चक्कर नहिं उसे खिलाती हैं ।
बुद्धी-समेत लेजा उसको गड़हे में नहीं गिराती हैं ॥
वह योगी अपने आपे में आप ही आप ख़ुश होता है ।
सुख में इतराता कभी नहीं; दुख में धीरज नहिं खोता है ॥
जिसका मन लगा नहीं रहता दुनियादारी के पचड़ों में ।
जो भय और क्रोध नहीं करता फँसजाने पर भी झगड़ों में ॥
जो भली-बुरी बातों का कुछ आनन्द शोक नहिं करता है ।
जो किसी वस्तु या प्राणी का नहिं मोह चित्त में धरता है ॥
जो सभी इन्द्रियों को अपनी इस तरह हटाले भोगों से ।
कछुआ ज्यों अपने हाथ-पाँव भीतर करले चहुँओरों से ॥

अर्जुन, वह ही योगी होता; जग में निर्द्वन्द्व विचरता है—
और मन को बिना फँसाये ही सब काम जगत् के करता है ॥

अर्जुन, इसी प्रकार तुम योगी बनो विशुद्ध ।
फल की इच्छा छोड़कर करो शत्रु से युद्ध ॥

गाना

फल की इच्छा में मन अपना न फँसाओ ।
अर्जुन, तुम योगी होकर युद्ध रचाओ ॥

(१)

कर्मों का करना पाप-पुण्य नहिं लाता ।
फल-इच्छा से ही पाप-पुण्य लगजाता ॥
जो फल-इच्छा के लिए नहीं ललचाता ।
उसपर कर्मों का पाप-पुण्य नहिं आता ॥
फल की इच्छा को त्याग अभय होजाओ ।
अर्जुन, तुम योगी होकर युद्ध रचाओ ॥

(२)

जब कर्मों के फल की इच्छा छुटजाये ।
तब कर्मों की फल-बाधा नहीं सताये ॥
फिर करे कर्म प्राणी जो मन में आये ।
नहिं उनका वह फल-भोग भोगनेपाये ॥
बस, कर्म करो फल-इच्छा मन मत लाओ ।
अर्जुन, तुम योगी होकर युद्ध रचाओ ॥

(३)

यह आँख-कान और नाक इन्द्रियाँ सारी ।
नित नई-नई इच्छायें करतीं भारी ॥
इन इच्छाओं में फँसी बुद्धि बेचारी ।
नित नये-नये कर्मों की करे तयारी ॥
इच्छाओं से कर्मों की बुद्धि हटाओ ।
अर्जुन, तुम योगी होकर युद्ध रचाओ ॥

(४)

इन्द्रियों को जो नर वश में लेआता है।
तब इनकी इच्छाओं से बचजाता है॥
जब इच्छाओं को मन नहिं ललचाता है।
तब बुद्धी में कल्मष नहिं लगपाता है॥
इस तरह बुद्धि को निर्मल-विमल बनाओ।
अर्जुन, तुम योगी होकर युद्ध रचाओ॥

(५)

जब बुद्धी उज्ज्वल-निर्मल होजाती है।
तब विषय-वासना में नहिं फँसपाती है॥
फिर कभी विषय-सुख को नहिं पतियाती है।
कर्मों के फल को भी नहिं ललचाती है॥
इस तरह बुद्धि लो साध न फिर घबराओ।
अर्जुन, तुम योगी होकर युद्ध रचाओ॥"

—:o:—

धैर्य-सहित भगवान् के सुनकर वचन उदार।
अर्जुन यों करनेलगा अपने प्रकट विचार॥
"फल-इच्छा को छोड़कर मनुज करे सब कर्म।
इस दुनिया में कृष्ण! यह—महाकठिन है धर्म॥
इससे हैं जो देह में—विविध इन्द्रियाँ पाँच।
नाना भोगों के लिए जो कि नचातीं नाच॥
व्रत-उपवासों से उन्हें—करडाले बलहीन।
भोगेच्छा भी बस तभी होजायेगी क्षीण॥"

यह सुनकर कहनेलगे कृष्ण—"हे पार्थ, राय यह ठीक नहीं।
बलहीन इन्द्रियाँ करने का बेढब उपाय यह ठीक नहीं॥
व्रत-उपवासों के करने से निश्शक्त इन्द्रियाँ बनजातीं।
और इस प्रकार से मनचाहा-वे भोग भोगने नहिं पातीं॥
लेकिन, मन में जो भोगों की अभिलाषा घर करजाती है।
वह इस उपाय से किसी तरह अर्जुन, नहिं कम होपाती है॥

भोगों की इच्छा बनीरही और काया ने भी दुख पाया—
तो अर्जुन, व्रत-उपवासों को करके भी लाभ न कुछ पाया ॥
इसलिए उचित है मार्ग यही बस बुद्धि विमल करलीजाये ।
जिससे मन की भोगेच्छा को वह वश में अपने लेआये ॥
मन की भोगेच्छा भली भाँति—जब क़ाबू में आजायेगी—
तो फल पाने की व्याकुलता मन में हलचल न मचायेगी ॥

मुख्य बात अर्जुन, यही ऐसा करे विधान ।
इन्द्रिय भोगों की तरफ़ पहुँच न पाये ध्यान ॥

भोगों में ध्यान पहुँचते ही झट उनमें मन फँसजाता है—
और उनके पाने के निमित्त नर नाना कर्म रचाता है ॥
जब नाना कर्मों की रचना यों एक बार रचजाती है ।
तब कर्मों का फल पाने की आशा मन में होआती है ॥
यह आशा ज्यों-ज्यों बढ़ती है—त्यों धीरज मिटता-जाता है—
और कर्मों का फल पाने को मन अकुलाता-घबराता है ॥
इस तरह कर्म फल मिलने में जब देरी होनेलगती है—
तब नित्य-नित्य थोड़ी-थोड़ी .गुस्से की आग सुलगती है ॥
.गुस्से के पैदा होते ही औसान नष्ट होजाता है ।
औसान नष्ट होजाने से नर ज्ञान-भ्रष्ट होजाता है ॥
ज्योंही नर होता ज्ञान-भ्रष्ट--त्योंही बुद्धी चकराती है ।
बुद्धी चकराते ही बहुधा दारुण विपत्ति घिर आती है ॥
इसलिए भलाई चाहे तो इन्द्रिय-सुख के आधीन न हो ।
बचना विपत्तियों से हो तो विषयों में नर लवलीन न हो ॥
हैं कर्म इन्द्रियों के जो कुछ; उनमें न द्वेष या राग रहे ।
वे कर्म होंय तो हुआ करें; बस मन अपना बेलाग रहे ॥

करता है इस रीति से जो मनुष्य व्यवहार ।
होजाता भव-सिन्धु से बेड़ा उसका पार ॥

जो इन्द्रिय-सुख के भोगों में मन को आसक्त बनाता है ।
वह मूर्ख मनुज इस जीवन में नहिं कभी शान्ति-सुख पाता है ॥
भोगों में साथ इन्द्रियों के यह मन भी जब फसजाता है ।
तब बुद्धि नाव को भँवर-बीच आँधी होकर लेआता है ॥
हाँ, इन्द्रिय-सुख के भोगों में मन उलझ नहीं जिसका जाता ।
उस नर की बुद्धि विमल रहती; वह बुद्धिमान् नर कहलाता ॥
अर्जुन, इस पृथ्वी-मण्डल पर जो नदियाँ शोभा पाती हैं -
वे वर्षा में मर्यादा से बाहर बहने लगजाती हैं ॥
लेकिन, जिस सागर में इन सब नदियों का पानी ज ता है ।
वह सागर निज मर्यादा से बाहर होने नहिं पाता है ॥
योंही इन्द्रिय-सुख-भोगों की नदियाँ इस जग में बहती हैं ।
जिसमें साधारण पुरुषों की बुद्धियाँ नहीं थिर रहती हैं ॥
लेकिन, मन-बुद्धी को अपने वश में जो नर लेआता है ।
वह सागर-सम मर्यादा में रहता है डिग नहिं जाता है ॥
ज्यों नदियों का जल पाकर भी सागर में अहला नहिं आता—
त्योंही जिसका मन वश में है, वह भोगों को नहिं ललचाता ॥
जो मर्यादा में रहता है—बस मोक्ष वही नर पाता है ।
विषयों में फँसजानेवाला चौरासी में फँसजाता है ॥
इसलिए विषय की इच्छा को छोड़ो मन को वश में लाओ ।
मन को वश में ला बुद्धी से एकाग्र और दृढ होजाओ ॥
फिर अर्जुन, इन्हीं इन्द्रियों से निष्कंटक करते कर्म रहो ।
जो कर्म तुम्हारा निश्चित है; पालन करते वह धर्म रहो ॥

मन-बुद्धी वश में रहने से कर्मों का फल नहिं बाँधेगा ।
कर्तव्य-कर्म यों करने से अर्जुन, नहिं पाप सतायेगा ॥
मन अलग हटाकर कर्म करे; है यत्न यही दुख हरने का ।
ज्ञानी पुरुषों के करने का; संसार-सिन्धु से तरने का ॥"

निश्चय यों सिद्धान्त जब बोले गोपीनाथ ।
अर्जुन ने इस भाँति तब कहा विनय के साथ ॥
"अच्छा, मन और बुद्धि ही है जब परम प्रधान ।
वश में लाने का इन्हें-करना उचित विधान ॥
वश में लाते ही इन्हें-मिलजाये जो इष्ट—
तब क्यों बेमतलब करूँ-युद्धकर्म अति क्लिष्ट ?"

इसपर फिर कहनेलगे कृष्ण-"सुस्पष्ट और समझाता हूँ ।
क्यों युद्ध तुम्हें करनाचाहिए अर्जुन, वह नीति बताता हूँ ॥
जबसे जग की यह सृष्टि चली तबसे दो मार्ग चले आते ।
वे ज्ञान-मार्ग और कर्म-मार्ग, इन नामों से जानेजाते ॥
जो ज्ञान-मार्ग से चलते हैं, वे सन्यासी कहलाते हैं ।
जग से सब नाता-नेह तोड़; बन में जाकर बसजाते हैं ॥
वे सब कर्मों को छोड़-छाड़ ईश्वर की चिन्ता करते हैं ।
जो कर्म हुए तो फल होगा; इसलिए कर्म से डरते हैं ॥
बस्ती में रहने से लालच कर्मों का मन में आयेगा ।
और कर्म किए तो फल उनका भोगना विवश पड़जायेगा ॥
ऐसा विचारकर वे जग से अत्यन्त दूर हटजाते हैं—
और सब कर्मों से हाथ खींच ईश्वर में ध्यान लगाते हैं ॥
पर बात वास्तव में यह है—कर्मों का फन्द न छुटता है ।
है कर्मशील नर इसीलिए—फिर कर्मों में आजुटता है ॥

यह मत समझो बन में रहकर कुछ भी न कर्म करना पड़ता ।
इसलिए कि जीवन रखने को, है पेट नित्य भरना पड़ता—
सो एक पेट भरने को ही पग-हाथ हिलायेजाते हैं ।
यह कहना मिथ्या है, बन में—नर कर्म नहीं करपाते हैं ॥
फिर और बात यह है, बन में—जब नर बनवासी होजाता—
तो माना, वह करने लायक़ बन में—कुछ कर्म नहीं पाता ॥
कुछ कर्म न पाने से उसकी इन्द्रियाँ नहीं कुछ करती हैं ।
पर, मन की इच्छाएँ अब भी भरपूर कुलाँचें भरती हैं ॥

मन की हो जब यह दशा तो सब व्यर्थ प्रयास ।
जैसा घर का वास है—वैसा है बनवास ॥

मन वश में नहीं हुआ है तो वह कभी न तप में रमता है ।
कितना ही यत्न करो लेकिन; तप का आसन नहिं जमता है ॥
पर, जिसका मन वश में है वह निर्द्वन्द्व फिरे बाज़ारों में ।
घर में ठहरे, या चलाजाय—जंगल में या कि पहाड़ों में ॥
आरम्भ न करके कर्मों का, नैष्कर्म्य नहीं कुछ मिलपाता ।
कर्मों को तजदेने पर भी नर सिद्ध नहीं है होपाता ॥
होता यह है कि इन्द्रियों से जब कर्म किया नहिं जाता है—
तब फिर भीतर ही भीतर नित भोगों को मन ललचाता है ॥
ऊपर से कर्मों को तजकर भीतर से जो ललचाते हैं—
तो अर्जुन, वे नर पाखण्डी, कपटी, ढोंगी कहलाते हैं ॥
इसलिए दूसरा मार्ग ठीक जो कर्म-मार्ग मानाजाता ।
उस कर्म-मार्ग में चलकर ही नर जन्म सफल है करपाता ॥
इस कर्म-मार्ग को जो मनुष्य इच्छापूर्वक अपनाते हैं—
वे घर में ही नित रहते हैं, निर्जन बन को नहिं जाते हैं ॥

यह कर्म-मार्ग वह है जिसमें मन वश में लाना होता है ।
विषयों से उसे हटाकर के एकाग्र बनाना होता है ॥
मतलब यह है इस कहने का हों सारे कर्म इन्द्रियों से ।
पर, मन को राग-द्वेष न हो, उन होनेवाले कर्मों से ॥

मन को जो यों जीतले—वही श्रेष्ठतम वीर ।
बन में जाना कुछ नहीं—उपयोगी तद्बीर ॥
सच्चा साधक है वही, मन को रक्खे हाथ ।
कर्म करे संसार के निर्भयता के साथ ॥

गाना

जब मन ही न हो वश में—कर्मों से बचा तो क्या ?
और गेरुआ रँगाकर पाखण्ड रचा तो क्या ?
कहने को कर्म छोड़े; पर, चाह नहीं छोड़ी ।
घर-द्वार छोड़कर सब—जंगल को चला तो क्या ?
मन को है जिसने बाँधा—बन्धन से छुटगया वह ।
फिर घर में रहा तो क्या और बन में रहा तो क्या ?
गर इन्द्रियों के सुख में मन डूब नहीं जाये ।
तब इन्द्रियों से जग का सब कर्म किया तो क्या ?
एकाग्र होगया मन तो फिर हैं सब बराबर ।
एकान्त हुआ तो क्या ? बाजार हुआ तो क्या ?

—०—

कर्मों के सम्बन्ध में एक और है मर्म ।
जिससे रहसकता नहीं बिना किए नर कर्म ॥

इस जग में नर के साथ-साथ ब्रह्मा ने यज्ञ बनाया है ।
जिस दिन आयी यह सृष्टि यहाँ, यह यज्ञ उसी दिन आया है ॥
यह यज्ञ बनाकर ब्रह्मा ने समझाया यही मनुष्यों को ।
सुख से जग में रहना हो तो करते-रहना इन यज्ञों को ॥
यज्ञों के द्वारा होते हैं—सन्तुष्ट देवतावृन्द जभी ।
देते हैं नित्य मनुष्यों को सुख-सौ य और धन-धान्य सभी ॥

सो यज्ञों के द्वारा जग का पोषण और पालन होता है—
और सृष्टि-चक्र का सुख-समेत सन्तत सञ्चालन होता है ॥
अब बिना कर्म के बतलाओ—किस तरह यज्ञ चलसकते हैं ?
और यज्ञ बिना इस भूतल के किस तरह जीव पलसकते हैं ?
इसलिए जगत् के जीवों को यज्ञों की आवश्यकता है ।
और यज्ञ होंय इसलिए सदा कर्मों की आवश्यकता है ॥
देवता सुखी करते हैं जब—देकर धन-धान्य मनुष्यों को ।
तब यही उचित है यज्ञों से सन्तुष्ट करें हम देवों को ॥
जो बिना दिये कुछ बदले में देवों से सम्पत् पाता है ।
वह नर पापी है, पामर है; पृथ्वी का भार बढ़ाता है ॥

इसीलिए यह है उचित—यज्ञ होंय स्वच्छन्द ।
यज्ञों से ही बीतता—जीवन यह सानन्द ॥

अब बात मुख्य इतनी-सी है—यज्ञानुष्ठान अवश्य करे ।
लेकिन, उन यज्ञों के फल की इच्छा अपने मन में न धरे ॥
बस, यही समझकर करे उन्हें—वे सृष्टि सदैव चलाते हैं ।
उनके द्वारा जग के प्राणी सब पोषण-पालन पाते हैं ॥
जो यह धारणा हृदय धरके यज्ञानुष्ठान रचाता है ।
उसको उन यज्ञों के फल का कुछ बन्धन नहिं लगपाता है ॥
त्रेता में मिथिला के राजा जो जनक विदेह कहाते थे—
वे इसी भाव से इस जग के सारे कर्तव्य निभाते थे ॥
मुझको ही देखो हे अर्जुन, मैं कुछ इच्छा नहिं रखता हूँ ।
ऐश्वर्य-भोग-सुख-सम्पत् की कुछ भी आशा नहिं रखता हूँ ॥
लेकिन फिर भी निर्लिप्त हुआ इस जग के बीच विचरता हूँ ।
फल-आशा किए बिना ही सब कर्मों को करता-धरता हूँ ॥

यदि आज त्याग दूँ कर्मों को मर्याद न फिर रहपायेगी ।
मेरी देखा-देखी दुनिया सब कर्मों से हटजायेगी ॥
दुनिया के कर्म छोड़ते ही सब नियम भ्रष्ट होजायेंगे ।
चौदहों भुवन जीवों-समेत अति शीघ्र नष्ट होजायेंगे ॥

कर्म छोड़देना नहीं उचित सुनो हे पार्थ !
स्वार्थ न हो, फिर भी करे कर्मों से परमार्थ ॥

जो ज्ञानीजन इस जीवन में नित करते कर्म दिखाते हैं ।
वे अपने लिए नहीं करते, औरों को राह बताते हैं ॥
उनके आचरणों से शिक्षा लेते हैं जग के जीव सभी—
और कर्मों के करने से फिर, नहिं खींचा करते हाथ कभी ॥
इसलिए कर्म से हे अर्जुन तुम हाथ खींच नहिं पाओगे ।
यह प्रकृति करायेगी तुमसे सब कर्म, कहाँ बचजाओगे ?"

अर्जुन बोला—"हे सखे, यह तो कहिए आप ।
किस कारण संसार में नर करता है पाप ?"
उत्तर में इस भाँति से बोलउठे—नँदलाल—
"काम क्रोध ही जीव को देयँ पाप में डाल ॥

उत्पन्न रजोगुण से होते अति क्रूर कराल कठोर हैं यह ।
बरजोरी पाप करादेते; ऐसे दुर्जय शहज़ोर हैं यह ॥

❀ गाना ❀

काम और क्रोध बड़े शहजोर ।
खींच-खींचकर पाप करादेते हैं यह बरजोर ॥ काम० ॥

संग्रह करता है मनुष्य जो सुकृत बटोर-बटोर ।
यह सब क्षणभर में हरलेते ऐसे पक्के चोर ॥ काम० ॥

ज्यों सूरज को ढकलेती है सघन घनघटा घोर—
त्यों ही यह भी ढकलेते हैं बुद्धी को चहुँओर ॥ काम० ॥

इनसे बचना हो तो श्रद्धा-निष्ठा की कर डोर ।
इसी डोर से मन को खींचे हरि-चरणों की ओर ॥ काम० ॥"

ॐ इति ॐ

प० राधेश्यामजी कविरत्न द्वारा लिखित नाटक

वीर अभिमन्यु	१।।)
महर्षि-वाल्मीकि	१।।)
सती पार्वती	१।।)
ईश्वर-भक्ति	१।।)
परम-भक्त-प्रह्लाद	१।।)
परिवर्तन	१।।)
श्रीकृष्ण-अवतार	१।।)
रुक्मिणी-मङ्गल	१=)
द्रौपदी-स्वयंवर	१।।)
श्रवणकुमार	१=)
ऊषा-अनिरुद्ध	१=)
मशरिक़ी हूर	१।।)
भारत-माता	।=)
कृष्ण-सुदामा	।=)
शान्ति के दूत भगवान् श्रीकृष्ण	।=)
सेवक के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण	।=)
घण्टा-पन्थ	।=)

नोट—नाटकों में वीर अभिमन्यु, श्रवणकुमार और मशरिक़ी हूर, उर्दू में भी छपकर तैयार हैं। दाम वही जो हिन्दी में हैं।

न्यू अल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी आफ़ बम्बई द्वारा खेले गये

असली व मुकम्मिल नाटक

भूलभुलैयाँ	१)	दिलफ़रोश	१)
चलतापुर्ज़ा	१)	शरीफ़ बदमाश	१)
ख़्वाबे हस्ती	१)	अछूता दामन	१)
ख़ूबसूरत बला	१)	हिन्दू विधवा	१=)

भारत व्याकुल थियेट्रिकल कम्पनी लिमीटेड आफ़ मेरठ द्वारा खेले गये

असली व मुकम्मिल नाटक

तेग़ेसितम	१=)	सम्राट् चन्द्रगुप्त	१=)

अन्य नाटक

महाराजा भर्तृहरि १=) पृथ्वीराज १।।)

भजन गाने व ग़ज़लें

श्रीराधेश्याम-गीताञ्जलि	१।।)
राधेश्याम विलास	१=)
राधेश्याम-कीर्तन	।।।)
राधेश्याम भजनमाला	१=)
प्राचीन भजनमाला	।=)
मोहन-कवितावली	।।।)
मुसाफ़िर की पाकेट बुक	।।।)
प्रेम-रत्नावली	≡)
निजानन्द प्रदीपिका	≡)
गृहिणी गीताञ्जलि	।=)
आनन्द-लहरी	–)।।
सीराभजनमाला	।।।)
बोध-प्रकाशी	।=)
पद्य-पुष्पांजलि	–)।।
आरती संग्रह	–)।।
ग़ज़लों का गुलदस्ता	≡)
ग़ज़ल सागर	।।।)
पद-पुञ्ज	–)।।
मोहन भजनमाला	।=)
मोहन कवितावली	।।।)
मोहन गीतावली	)।।
मोहन संगीत शिक्षा	।=)
सीताराम-कीर्तन	।।।)

भ्रमर-गीत-माला

मीठी गुञ्जार	≡)	मधुर मुरली	≡)
रसीली तान	≡)	कुसुम-कुंज	≡)
बसंतवाटिका	≡)	पद्म-पराग	≡)

अन्य पुस्तकें

भक्त स्त्रियाँ	।।।)	अमरकोष	।=)
सतलड़ी	।।।)	पञ्चों का प्याला	)।।
अजायब घर	।।।)	धनुर्विद्या	।।।)
प्रेत-लोक	१।।)	नौलखाहार	१।।)
ज्योतिष-प्रकाश	।।)	दृष्टांत महासागर	१।।)
वियोग-कथा	।=)	मोहन माला	≡)
हनुमान् चालीसा	–)।।	सुन्दर काण्ड	।=)

नक़ली किताबों से बचिये

हमारी रामायण और हमारे नाटकों का काफ़ी प्रचार देखकर लोगों ने उसी रंग और रूप की नक़ली किताबें छाप छापकर प्रकाशित करदी हैं। नक़कालों की कई बरस की कोशिश का नतीजा यह है कि बाज़ार में नक़ली किताबों की भरमार है। यह नक़ली किताब)॥ में बुकसेलर को दी जाती है, जिसे बुकसेलर -) या =) या ≡) में बेचकर फ़ायदा उठाता है और इस प्रकार ग्राहक को धोखा दिया जाता है। ग्राहक जब ऐसी किताब घर ले जाता है तो पछताता है। ग्राहक को ऐसी धोखेबाज़ी से बचाने के लिये अब हम अपनी हर एक किताब के ऊपर अपनी तस्वीर देने लगे हैं, जैसी कि इस किताब पर आप देख रहे हैं। अब आइन्दा से आप धोखा न खाइयेगा--

ध्यान रहे--

जिन किताबों पर--"राधेश्याम" या--"राधेश्याम वाशिष्ठ" या "तर्ज़--राधेश्याम" छपा रहता है, वह हमारे यहाँ की नहीं हैं। हमारे यहाँ की किताबों पर हमारे यह दस्तख़त भी रहते हैं। इन्हें पहचान लीजिये--

श्रीराधेश्याम

भवदीय--

राधेश्याम कथावाचक

मालिक--श्रीराधेश्याम-पुस्तकालय, व प्रेस बरेली।

कर्म-योग



प्रकाशक—
नेपाल गवर्नमेण्ट से 'कथावाचस्पति' की पदवी प्राप्त-
कीर्तन-कला-निधि, काव्य-कला-भूषण, श्रीहरि-कथा-विशारद, कविरत्न—

राधेश्याम

अध्यक्ष—श्रीराधेश्याम-पुस्तकालय, बरेली।

मूल्य ।)॥ आने

प० राधेश्यामजी कविरत्न लिखित नवीन कृति

कृष्णायन

जन्माष्टमी |=) नन्द-महोत्सव |=)
कमलीवाला कन्हैया |=) गिरिवरधारी |=)
रास-रहस्य |=) कंस-वध |=)
नन्द-नन्दन-वसुदेव-नन्दन |=)

सम्पूर्ण सातों भाग एक सुन्दर जिल्द में छः आने अधिक देने पर अर्थात् तीन रुपए में मिलेंगे। डाक महसूल |≡) अलग

रुक्मिणी-मंगल

(राधेश्याम रामायण की तर्ज़ में)

रुक्मिणी-जन्म |=)
रुक्मिणी का कृष्ण प्रेम |=)
रुक्मिणी की सगाई |=)
रुक्मिणी का पत्र-लेखन |=)
रुक्मिणी का गिरिजा-पूजन |=)
रुक्मिणी का भ्रातृस्नेह |=)
रुक्मिणी विवाह |=)

सम्पूर्ण सातों भाग एक सुन्दर जिल्द में छः आने अधिक देने पर अर्थात् तीन रुपए में मिलेंगे। डाक महसूल |≡) अलग

श्रीमद्भगवद्गीता

(राधेश्याम रामायण की तर्ज़ में)

अर्जुनमोह |)॥ विराट्रूप-दर्शन |)॥
आत्मा की अमरता |)॥ जीव-ब्रह्म-विवेक |)॥
कर्म-योग |)॥ अर्जुन का समान |)॥

नोट—सम्पूर्ण ६ भाग एक सुन्दर जिल्द में |–) अधिक देने पर, अर्थात् २) में, मिलेंगे तथा जिल्ददार गुटका १॥)रु० में मिलेगा। डाक महसूल गुटका |–) अलग अलग भाग पर |=)।

दुर्गा-चरित्र

(राधेश्याम रामायण की तर्ज़ में)

महिषासुर-वध |=)
शुम्भ का उत्पात |=)
[illegible] का पराक्रम |=)
रक्त-बीज की लड़ाई |=)
शुम्भ और निशुम्भ का वध |=)

नोट सम्पूर्ण ५ भाग एक सुन्दर जिल्द में छः आने अधिक देने पर अर्थात् २) में मिलेंगे, तथा जिल्ददार गुटका [illegible] में मिलेगा। डाक महसूल गुटका अलग अलग भाग पर |=)।

महाभारत

(राधेश्याम रामायण की तर्ज़ में)

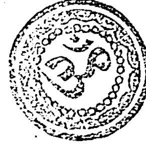
भीष्म-प्रतिज्ञा
भीष्म-पराक्रम
पाण्डव-जन्म
पाण्डवों का बाल्य-काल
पाण्डवों की शस्त्र-परीक्षा
लाक्षागृह
बक-संहार
द्रौपदी-विवाह
सुभद्रा-हरण
राजसूय-यज्ञ
द्रौपदी-वस्त्र-हरण
किरातार्जुन-युद्ध
यक्ष-सम्वाद
कीचक-वध
अभिमन्यु विवाह

अन्य कथायें

(राधेश्याम रामायण की तर्ज़ में)

नरसी की हुंडी
श्रीसत्यनारायण की कथा
प्रह्लाद-चरित्र
ध्रुव-चरित्र
सुदामा-चरित्र
मोरध्वज-चरित्र
भर्तृहरि-चरित्र
महाराणा प्रतापसिंह
सत्यवादी हरिश्चन्द्र
सावित्री-सत्यवान
मीराबाई
भक्त-अम्बरीष
अभिमन्यु की वीरता
गुरु गोविन्दसिंह
गुरु नानक
बुद्ध-चरित्र
द्रौपदी-लीला
महाराजा दिलीप
सती स्वयम्बर
सती मोह
महर्षि चरित्र (५) भाग

पता—श्रीराधेश्याम-पुस्तकालय, बरेली।



संख्या ३

श्रीमद्भगवद्गीता

लेखक—
प० रामनारायण पाठक



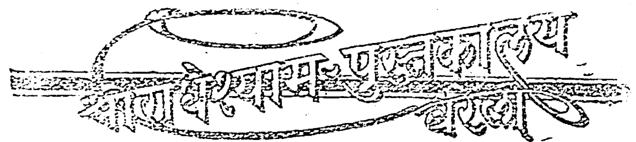
कर्म-योग



प्रकाशक—
नेपाल गवर्नमेण्ट से "कथावाचस्पति" की पदवीप्राप्त—
कीर्तन-कला-निधि, काव्य-कला-भूषण,
श्रीहरि-कथा-विशारद, कविरत्न—

प० राधेश्याम कथावाचक,

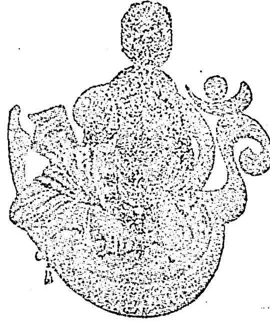
अध्यक्ष—



पाँचवीं बार २०००] सन् १९४५ ई० [मूल्य साढ़े चार आने

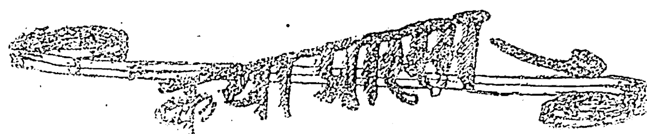
प्रिंटर—पं० रामनारायण पाठक, श्रीराधेश्याम-प्रेस, बरेली।

❀ ॐ ❀



प्रार्थना

प्राण प्यासे हैं मेरे बाँसुरीवाले आजा।
नाव मँझधार में है नाथ बचाले आजा ॥
बल है निर्बल का तुही धन है तुही निर्धन का।
जग का जीवन है औ जीवन के उजाले आजा ॥
होता जाता है दिनोंदिन तेरा गोकुल ऊजड़।
अपने उस धाम को फिर धाम बनाले आजा।
अब भी शिशुपाल से फिरते हैं अनेकों पामर।
फिर उसी चक्र सुदर्शन को सँभाले आजा ॥
आज भी देवकी भारत की है बन्धन में दुखी।
शीघ्र आकर उसे बन्धन से छुड़ाले आजा ॥
तेरा 'निर्गुण' तुझे ढूँढे है सुदामा बनकर।
आप आकर उसे छाती से लगाले आजा ॥



सुनकर यह श्रीकृष्ण की, ज्ञान-गिरा गम्भीर ।
अर्जुन यों कहने लगा, विनय सहित बलवीर ॥
"अद्भुत है यह आप का, युक्ति-पूर्ण व्याख्यान ।
कृष्ण, सुना मैंने नहीं, अब तक ऐसा ज्ञान ॥
कैसी अनुपम रीति है, कैसा सुघर उपाय ।
बहु विधि कर्मों को करे, और फल से बच जाय ॥"

उत्तर में बोले कृष्ण-"सुनो, अर्जुन, जो तुम्हें बतायी हैं ।
सो बड़ी पुरानी बातें हैं, कुछ नयी नहीं समझायी हैं ॥
यह ज्ञान वही है जो मैंने, जब पहले पहल सुनाया था ।
तो विवस्वान् ने प्रेम सहित, सुनकर उसको सुख पाया था ॥
फिर विवस्वान् ने ज्यों का त्यों, वह बतलाया मनु मुनिवर को ।
मनु मुनिवर से यह प्राप्त हुआ, इक्ष्वाकु राजराजेश्वर को ॥
यों ही आगे चलते चलते, ऐसा युग आया एक नया ।
जब माया के पचड़े में पड़, संसार ज्ञान यह भूल गया ॥
सो वही ज्ञान अब सुलझा कर, मैंने तुमको समझाया है ।
अर्जुन, है तुमसे प्रीति मुझे, इसलिये तुम्हें बतलाया है" ॥

अर्जुन बोला-"उस समय, आप कहां थे तात ?
विवस्वान् का जन्म तो, है सतयुग की बात ?
प्रकट हुए हैं आप जब, द्वापरयुग में आन ।
दिया आप ने किस तरह, विवस्वान् को ज्ञान ?
मधुसूदन मुसका कर बोले,--'सतयुग में विवस्वान् थे जब ।
अर्जुन, यह सच जानो मैं भी, इस जग में वर्तमान था तब ॥
मैंने और तुमने बार बार, बहु जन्म लिये हैं भूतल पर ।
उन जन्मों का वृत्तान्त सभी, मुझको मालूम योगबल पर ॥
यद्यपि मैं जग का स्वामी हूं, लेकिन हूं जग से बचा हुआ ।
जीने और मरने का झगड़ा, मेरे पीछे नहीं लगा हुआ ॥
फिर भी जब कभी बड़ी भारी, आवश्यकता मैं पाता हूं ।
तो अपनी माया से जग में, एक देह बना आजाता हूं ॥"
पूछा अर्जुन ने तभी,--"दीजे कृष्ण, बताय ।
आवश्यकता आपको, कब और क्यों होजाय ?
पड़ती ऐसी कौनसी, अतिशय भारी भीर ?
आते जिससे आप हैं, धर कर मनुज शरीर ?"
बोले गोपाल--'सुनो अर्जुन, जब पाप बहुत बढ़ जाता है ।
और दुष्ट मनुष्यों का समाज, ऊधम अत्यन्त मचाता है ॥
जब निर्धन प्राणी को धनाढ्य, निर्बल को सबल सताते हैं ।
जब दुर्जन को आदर मिलता, और साधु निरादर पाते हैं ॥
अबलाओं और अनाथों का, जब पीडन होने लगता है ।
निशि-दिन मेरे प्रिय-भक्तों का, जब क्रन्दन होने लगता है ॥
जग के अधिकांश व्यक्तियों की, जब बुद्धि बिगड़ने लगती है ।
गो ब्राह्मण के प्रतिपालन में, जब बाधा पड़ने लगती है ॥

व्यभिचार झूठ चोरी हत्या, जब ऊँचा शीश उठाते हैं ।
जब नर-नारी मर्यादा से, उल्टे चलने लग जाते हैं ॥
तब पाप पुंज का क्षय करने, उद्धार धर्म का करने को ।
मैं मनुज-देह धर आता हूं, पृथ्वी का बोझा हरने को ॥
अन्याय अनीति दबा करके, फिर सुमति सुनीति चलाता हूं ।
सङ्कट में पड़े साधुओं को, सङ्कट से शीघ्र छुड़ाता हूं ॥
मेरे आने से दुनिया को, एक नव-जीवन मिलजाता है ।
पापों और अत्याचारों का, भय से आसन हिलजाता है ।

धर्मधुरा सुस्थिर रहे, चला चले संसार ।
लेता हूं मैं इसलिए, बारबार अवतार ॥

❀ गाना ❀

पृथ्वी पर पापाचार जभी होता है ।
अर्जुन, मेरा अवतार तभी होता है ॥

[१]

जब उचित मार्ग से जनता हट जाती है ।
और न्याय नीति की महिमा घट जाती है ॥
मर्यादा जब सब उलट-पलट जाती है ।
जब सत्य सनातन की जड़ कट जाती है ॥
कर्तव्य—भ्रष्ट संसार जभी होता है ।
अर्जुन मेरा अवतार तभी होता है ॥

[२]

पापी जब परधन परदारा हरते हैं ।
नहीं स्वर्ग नरक का ध्यान कभी करते हैं ॥
बल से निर्बल को सबल जभी धरते हैं ।
और देते उनको त्रास नहीं डरते हैं ॥
यों जग में हाहाकार जभी होता है ।
अर्जुन, मेरा अवतार तभी होता है ॥

[३]

अधिकांश जगत जब नास्तिक हो जाता है।
स्वच्छन्द किया करता जो मन भाता है॥
अज्ञान जब कि जगतीतल पर छाता है।
और विश्व जभी भ्रम में चक्कर खाता है॥
जीवों में मलिन विचार जभी होता है।
अर्जुन, मेरा अवतार तभी होता है॥

[४]

सत्कर्मों से जब श्रद्धा कढ़ जाती है।
पापों में सब की रुचि जब बढ़ जाती है॥
विद्या पर जभी अविद्या चढ़ जाती है।
विद्वानों की जब कला बिगड़ जाती है॥
सज्जन सब विधि लाचार जभी होता है।
अर्जुन, मेरा अवतार तभी होता है।

[५]

जब अनाचार की वायु खूब बहती है।
जब प्रजा दुराचारों में फंस रहती है॥
ब्राह्मण समेत जब गो संकट सहती है।
चर अचर सृष्टि जब त्राहि त्राहि कहती है।
बेतार धर्म का तार जभी ॥
अर्जुन, मेरा अवतार तभी होता है॥

—o—

है मेरे अवतार का, अर्जुन, बस यह भेद।
हेतु यही अवतार का, मिटे जगत् का खेद॥

जिस को मेरे अवतारों का, यह भेद विदित हो जाता है।
जो मन मेरी इस लीला से, पूरा परिचित हो जाता है॥
उस ज्ञानीजन को अनायास, सुख सहित मोक्ष मिलजाती है।
चौरासी लाख योनियों की, झंझट नहिं उसे सताती है॥
कितने ही जन यों ज्ञानी हो, मन राग द्वेष से बिलगाकर।
नित ध्यान मेरा धरते धरते, मिलगये हैं मुझ में ही आकर॥

लेकिन जो कर्म किया करते, मन में फल की इच्छा लाकर ।
उनको मिलती है मोक्ष नहीं, वे मुझमें नहिं मिलते आकर ॥
सन्तुष्ट देवताओं को जो, करते हैं यज्ञों के द्वारा ।
उनके उन यज्ञों का उनको, देता हूँ मैं ही फल सारा ॥
कारण यह है वे यज्ञ सभी, अन्त में मुझी को आते हैं ।
इसलिये यज्ञ करनेवाले, फल भी मुझ से ही पाते हैं ॥
जिस फल के लिये यज्ञ होता, वह फल बस मैं देदेता हूँ ।
जो जिस विधि मुझ तक आते हैं, मैं उन्हें उसी विधि लेता हूँ ॥
जो फल की आशा को तजकर, यज्ञों का साधन करते हैं ।
वे यज्ञों का फल नहिं पाते, हाँ—मोक्ष उपार्जन करते हैं ॥

फल इच्छा तजकर करे, यज्ञादिक व्यवहार ।
जन्म मृत्यु से बस तभी, मिलता है उद्धार ॥

अर्जुन, मैंने इस दुनिया में, जड़ चेतन सभी बनाये हैं ।
ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य शूद्र, यह चारों वर्ण रचाये हैं ॥
लेकिन मेरा मन उन सब में, अणुमात्र नहीं बिलमाया है ।
इससे यह भी मैं कहता हूँ, मैंने कुछ नहीं बनाया है ॥
कारण यह है जो कर्मों में, मन अपना नहीं फँसाते हैं ।
वह उनको करके भी उनके, कर्ता नहिं माने जाते हैं ॥
सो मेरी तरह कर्म जो नर, करते हैं वे सुख पाते हैं ।
कर्मों के भोगों से छुटकर, भवसागर से तर जाते हैं ॥

मोक्षार्थी पहले सभी, करते थे यों कर्म ।
अर्जुन, तुम पालन करो, इसी तरह निज धर्म" ॥
इतना भाषण कर चुके, जब कि सच्चिदानन्द ।
अर्जुन ने पूछा तभी, करके चित्त अमन्द ॥

"समझाकर कहिए मुझे, सखे, ज़रा यह मर्म ।
कहते हैं किसको यहाँ, कर्म, अकर्म, विकर्म ?"

सुनकर गोविन्द लगे कहने,—"अर्जुन, समझाये देता हूँ ।
सब कर्म अकर्म विकर्मों की, पहचान कराये देता हूँ ॥
अच्छे अच्छे परिडतजन भी, इस जगह भूल कर जाते हैं ।
और कर्म अकर्म विकर्मों को, पहचान ठीक नहीं पाते हैं ॥
प्राय:, यह माना जाता है, यदि कर्म न कुछ हो पायेगा ।
तो यही न होना कर्मों का, जग में अकर्म कहलायेगा ॥
लेकिन अर्जुन, यह सब भ्रम है, सब उल्टा समझा जाता है ।
कर्मों के करने का त्यागन, बिल्कुल न अकर्म कहाता है ॥
सच्चा अकर्म तब है अर्जुन, जब सारे कर्म किये जायें ।
लेकिन उनके फल पाने की, इच्छायें नहिं मन में आयें ॥
इससे निश्चय यह सिद्ध हुआ, जितने भी कर्म कहाते हैं ।
वे ही यदि ढँग से किए जाँय तो सब अकर्म होजाते हैं ॥
अब सुनो कर्म तज देने से, जो लोग अकर्म मानते हैं ।
उनका अकर्म भी होय कर्म, यह भेद नहीं वे जानते हैं ॥
वह भेद इस तरह है देखो, दृष्टान्त सुनाकर कहता हूँ ।
अर्जुन, तुमको समझाने में, आनन्द अमित मैं लहता हूँ ॥
तुम ज़रा देर को यह मानो, कुछ दुष्ट कहीं से आजाएँ ।
और घर में घुसकर शठता से, घरवालों को दुख पहुँचाएँ ॥
उस घर में यदि उस अवसर पर, तुम भी अर्जुन, मौजूद रहो ।
लेकिन बैठे बैठे सब कुछ, देखते रहो और कुछ न कहो ॥
तो कहने को तो यह होगा, तुमने इस तरह अकर्म किया ।
पर इस अकर्म में हे अर्जुन, तुमने सचमुच एक कर्म किया ॥

दुष्टों की तुमने रोक न की, यह पाप तुम्हारे सिर आया ।
कुछ नहीं किया तुमने लेकिन, फिर भी सब कुछ कर दिखलाया ॥
अर्थात् अकर्म तुम्हारे में, एक पातक कर्म हुआ भारी ।
उस पातक का फल आगे को, पाओगे तुम अति दुखकारी ॥
पंडित है अर्जुन वही, जो समझे यह मर्म ।
देखे कर्म अकर्म में, और अकर्म में कर्म ॥
अब यह भी तुम्हें बताता हूँ, कुछ ऐसे कर्म कहाते हैं ।
जो बुरी नियत से होते हैं, और तामस माने जाते हैं ॥
व्यभिचार, झूठ, चोरी, निन्दा, हत्या हिंसादिक कर्म सभी ।
तामसिक विचारों के फल हैं, कहलाते घोर अधर्म सभी ॥
इन घोर अधर्मों को बुधजन, विपरीत कर्म बतलाते हैं ।
और यह विपरीत कर्म ही सब, अर्जुन विकर्म कहलाते हैं ॥
इन धर्म विरुद्ध विकर्मों से, सर्वथा अलग रहना चाहिए ।
अज्ञान विवश इनको करके, नहिं कष्ट कभी सहना चहिए ॥

[व्याख्यान- भगवान ने अर्जुन को यह बतलाया कि कर्म, अकर्म और विकर्म किसे कहते हैं। अब तक जितना उपदेश भगवान् ने दिया है उसका तात्पर्य यह है कि कर्मों का करना छोड़कर खाली बैठे रहना 'अकर्म' नहीं कहलाता। यद्यपि साधारण रीति से 'अकर्म' का अर्थ कर्मों का न करना होता है, तथापि जब कर्म-विपाक के मत से विचार करते हैं तब खाली बैठे रहना 'अकर्म' नहीं सिद्ध होता। इसका उदाहरण भी भगवान् ने यह दिया है कि घर में चोर बदमाश आदि दुष्ट पुरुषों के घुस आने पर और उनके द्वारा घर के लोगों के मारे पीटे जाने पर घर के मालिक का चुपचाप बैठे देखते रहना और उनके बचाने का कोई उपाय न करना अकर्म नहीं कहा जायगा, बल्कि यह भी एक कर्म होगा और पाप-कर्म होगा इस पाप कर्म का बुरा फल घर के मालिक को भोगना पड़ा तो ठाली बैठना भी एक कर्म होगया कहने को जो अकर्म था वही वास्तव में बुरा फल देने वाला एक कर्म सिद्ध हुआ। इस व्याख्यान से निश्चित हुआ कि कहने में जो 'अकर्म' है वही वास्तव में 'कर्म' होसकता है। और मन की लगावट और फल पाने की इच्छा को त्याग कर जो कर्म किया जाता है वह फल का न देने वाला होने से 'अकर्म' हो सकता है

कर्म का अकर्म और अकर्म का कर्म कैसे हो सकता है यह बतला चुकने पर भगवान् ने अर्जुन को यह बतलाया कि 'विकर्म' किसे कहते हैं। भगवान् ने कहा कि जो कर्म बुरी नियत से किए जांय और दूसरे को दुःख पहुंचाने वाले हों वे सब के सब विकर्म होते हैं। उदाहरण के लिए चोरी, व्यभिचार, वञ्चना, हत्या और हिंसा यह सब 'विकर्म' हुए। 'विकर्म' की यह व्याख्या सुन कर अर्जुन चौंक पड़ा। उसने सोचा कि हिंसा जब 'विकर्म' है तब युद्ध करने में तो हिंसा बच नहीं सकती। तब फिर युद्ध का उपदेश देकर कृष्ण मुझसे विकर्म क्यों करा रहे हैं? इस सन्देह के उत्पन्न होते ही भगवान् से उसने शंका कर डाली। अर्जुन की इस शंका और भगवान् के द्वारा होने वाले उस शंका के समाधान को लेकर ही आगेका प्रसंग चलता है]

अर्जुन बोले—"जब कि है, हिंसा घोर अधर्म ।
तब तो अनुचित है मुझे, रण करने का कर्म ॥
रण में हिंसा होयगी, हिंसा घोर विकर्म ।
कृष्ण कराते आप यह, क्यों मुझसे दुष्कर्म" ?

मुरलीधर मीठी बोली में, बोले—"हां युद्ध कराता हूं ।
हिंसा होगी लेकिन फिर भी, अर्जुन मैं रण रचवाता हूं ॥
पर ध्यान रहे यह कहता हूं, बुद्धी को साध लिया जाये ।
कर्तव्य समझ समबुद्धी से, अर्जुन यह युद्ध किया जाये ॥
क्षत्री के लिए युद्ध करना, आवश्यक कृत्य बनाया है ।
लाचारी है जब ऐसा ही, क्षत्री का धर्म बताया है ॥
क्षत्री का यह हिंसावाला, यदि धर्म जगत् से हट जाए ।
तो क्षण भर में बहु क्लेशों से, अर्जुन यह पृथ्वी पट जाए ॥
व्यभिचारी, चोर,लबार, धूर्त, मिलकर अन्धेर मचा डालें ।
सब न्याय का राज मिटा करके, अन्याय का राज रचा डालें ॥
जग की रक्षा को ईश्वर ने, क्षत्री जग में उपजाए हैं ।
क्षत्री वीरों के साथ साथ, क्षत्री के बाण बनाए हैं ॥
क्षत्री के बाणों के भय से, अन्याय न बढ़ने पाता है ।
क्षत्री के बाणों के भय से, दुष्टों का दल दब जाता है ॥

क्षत्री के बाणों के बल से, मर्यादा सुस्थिर होती है ।
क्षत्री के बाणों के बल से, सब प्रजा चैन से सोती है ॥
ईश्वर ने अपनी माया से, जब यह संसार रचाया था ।
तो इसका रक्षक सञ्चालक, क्षत्री का बाण बनाया था ॥

क्षत्री का संसार में, है हिंसामय कर्म ।
लेकिन है इस कर्म से, रहता जिन्दा धर्म ॥

इस तरह देखने पर अर्जुन, नहिं दोष समझ में आता है ।
क्षत्री का हिंसा-कर्म सखे, एक श्रेष्ठ कर्म बनजाता है ॥
क्षत्री अपनी हिंसा द्वारा, उपकार जगत् का करता है ।
इसलिए मृत्यु उपरान्त कभी, वह नरक भोग नहिं भरता है॥
सब कर्मों की रक्षा को जब, क्षत्री का धर्म विराजा है ।
तब ही तो जग के जीवों में, क्षत्री कहलाया राजा है ॥
यह सिद्ध हुआ इस से अर्जुन, हिंसा की आवश्यकता है ।
क्षत्री जग के कल्याण हेतु, निर्भय हिंसा कर सकता है ॥

[व्याख्यान—कवि-कुल-कुमुद-कलाधर, संस्कृत के प्रतिभाशाली महाकवि श्रीपंडित कालिदासजी ने अपने रघुवंश महाकाव्य में क्षत्रिय शब्द की प्रशंसा में एक स्थल पर लिखा है:—

"क्षतात्किलत्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः"

अर्थात् दूसरों को पीड़ा और दुःख से बचाने के कारण ही क्षत्रिय का नाम विश्व में विख्यात हुआ है। एक और नीतिकार ने कहा है कि—"राजा प्रकृतिरञ्जनात्"। अर्थात् राजा इसलिये कहाता है कि वह अपनी प्रजा का रञ्जन अर्थात् उसको प्रसन्न करता रहता है। इन दोनों ही प्रमाणों से यह सिद्ध हुआ कि क्षत्रिय का युद्ध-कर्म संसार में सुख शांति बनाए रखने और प्रजा की जान माल बचाने को है। ऐसी दशा में हिंसायुक्त होने पर भी क्षत्रिय का कर्तव्य बड़े ऊँचे दर्जे का है। यह कर्तव्य ऊँचे दर्जे का न होता तो संग्राम में प्राण खोने वाले क्षत्रियों को स्वर्ग का अनायास मिलना किसी तरह सम्भव नहीं हो सकता था। अब आगे भगवान् यह बताते हैं कि इस हिंसा कर्म को भी संसार की भलाई के लिए क्षत्रिय किस तरह से करे।

हां इतनी बात जरूरी है, यह हिंसा ऐसे की जाये ।
बस हाथ पांव सब कर्म करें, पर मन उसमें न उलझ पाए ॥
मन उसी समय नहिं उलझेगा, जब बुद्धि उसे कुछ रोकेगी ।
यह कार्य करेगी बुद्धि तभी, जब पहले निर्मल होलेगी ॥
बुद्धी को निर्मल करने का, साधन बस एक ज्ञान ही है ।
इसलिए साधने में मन के, आवश्यकता बस ज्ञान की है ॥

मन को अपने साधकर, कर्म करें जो लोग ।
मिलता है उनको नहीं, कभी कर्म का भोग ॥

जब मन अपनी मुट्ठी में है, और भली भांति है सधा हुआ ।
इन्द्रियां कर्म जो करती हों, उनमें न ज़रा है फँसा हुआ ॥
तो सब कुछ करलेने पर भी, तुम कर्ता नहीं कहाओगे ।
अर्जुन उन कर्मों के फल से, तुम कभी न बाँधे जाओगे ॥
पर जिसका मन अज्ञानी है, वह कभी नहीं बच पायेगा ।
ठाली भी कुछ कर डालेगा, और फल उसका पाजायेगा ॥

[व्याख्यान—अष्टावक्र ऋषिने भी अपनी अष्टावक्रगीता में एक जगह कहा है—

निवृत्तिरपि मूढस्य, प्रवृत्तिरुपजायते ।
प्रवृत्तिरपि धीरस्य, निवृत्तिफलभागिनी ॥

अर्थात् मूर्ख पुरुष यदि कर्मों को छोड़ भी देंगे तब भी कुछ कर्म उन से होता जायगा और वे उस कर्म के फल से बँधते जांयगे। विपरीत इसके जो ज्ञानी पुरुष हैं वे कर्मों का त्याग न करके भी इस ढंग से काम करते हैं कि उन्हें उसका फल न भोगना पड़े । वे मन को कर्मों में आसक्त नहीं होने देते। बल्कि केवल इन्द्रियों से, अर्थात् हाथ पाँव आदि से, उन कार्मों को करते हैं जो उनके सामने आजाते हैं। इन्द्रियों के द्वारा काम करते हुए अपने मन को उस के फल से प्राप्त होनेवाले आनन्द या क्लेश से वे बिल्कुल अलग रखते हैं। इसी रीति से उनके कर्मों का फल उन्हें कभी नहीं मिलता। यह नियम हमारे नित्य के व्यवहारों में भी काम आता है। उदाहरण के लिए मानलो कि हमारे हाथ में तलवार देकर कोई जबर्दस्ती किसी की हमसे हत्या करा दे। तो ऐसी अवस्था में हमारा मन उस हत्या के कर्म में कभी शरीक न होगा। हमारा मन

जब कि शरीक नहीं हुआ है, और वह हत्या हम से ज़बर्दस्ती और बेमन के करायी गयी है तो न्यायालय में हमारा अपराध नहीं माना जायगा और हम साफ़ छोड़ दिये जायेंगे। यही बात कर्म-विपाक शास्त्र में भी है। जिस काम को हम मन से न करके सिर्फ़ हाथ पैर से कर देते हैं, अथवा प्रकृति करा देती है तो उस कर्म का फ़ल हमें नहीं मिलता है]

लिया न चाहे कर्म फल, तो रटले यह मन्त्र ।
कर्म करें सब इन्द्रियाँ, पर मन रहे स्वतन्त्र ॥

गाना

जिसे इस भाँति से कर्मों का करना नित्य आता है ।
उसे अर्जुन, न फिर कर्मों का-फल कुछ भी सताता है ॥
जगत् यह कर्म-सागर है यहाँ पर जीव आकर के ।
बिना कर्मों के ठाली एक क्षण भी रह न पाता है ॥
बुराई कुछ नहीं है इन्द्रियाँ यदि कर्म करती हैं ।
बुराई है तो यह है कर्म में मन फँस जो जाता है ॥
भला अथवा बुरा जो फल हुआ करता है कर्मों का ।
सो तब होता है मन में फल का लालच जब समाता है ॥
जो बचना चाहता है कर्म-फल से उसका यह ढँग है ।
कि कर्मों में वह अपना मन नहीं तन्मय बनाता है ॥
दिखाने को करे सब कर्म और मनको अलग रक्खे ।
वही पण्डित कहाता है वही योगी कहाता है ॥

कर्मों का फल जब कि है, यों अपने आधीन ।
तब अर्जुन तुम किसलिए, होते चिन्तालीन ?
ज्ञानवान् होकर करो, संशय सभी निवृत्त ।
होजाओ बस युद्ध में, परिकर बाँध प्रवृत्त ॥
जो ज्ञानी है वह कर्मों के, करने में भय नहिं खाता है ।
उसकी प्रचण्ड ज्ञानानल से, सब फल उनका जल जाता है ॥
वह अपने कर्मों का बदला, कुछ भी नहिं चाहा करता है ।
इसलिए उसे उन कर्मों का, कुछ फल न दबाया करता है ॥

निर्द्वन्द्व, सुखी, सन्तुष्ट, शान्त, निष्काम, निराश्रय रहता है ।
इस जगके सुख और दुःखों को, वह धीरज धर कर सहता है ॥
मन से वह कर्म नहीं करता, हाँ काया से कर लेता है ।
उन कर्मों का फल लेकर के, हरि-चरणों में धर देता है ॥
उस ज्ञानी जन की चित्त-वृत्ति, ऐसी निर्मल हो जाती है ।
जिससे यह सारी सृष्टि उसे, बस ब्रह्म दृष्टि में आती है ॥
वह अपने को और औरों को, ब्रह्मस्वरूप ही लखता है ।
नभ पृथ्वी को-जड़ जंगम को, जल-थल को ब्रह्म समझता है ॥
इस ब्रह्म-भावना से उसके, सब कर्म ब्रह्म होजाते हैं ।
वह अपने को भी ब्रह्म गिने, इसलिए न कर्म सताते हैं ॥

यज्ञादिक जो कुछ कभी, करता यह सज्ञान ।
रहता उनमें भी यही, उसका भाव प्रधान ॥

प्रायः यज्ञों के करने में, कुछ हव्य बनायी जाती है ।
आहुति उस हव्य की देने को, यज्ञाग्नि जलायी जाती है ॥
दूसरी तरह का यज्ञ एक, इस तरह मनुष्य रचाते हैं ।
जिसमें संयम की अग्नि बना, उसमें इन्द्रियाँ तपाते हैं ॥
फिर इस प्रकार से भी जगमें, एक यज्ञ देखने में आता ।
जिसमें अपान में प्राण, प्राण में फिर अपान होमा जाता ॥
यों द्रव्य-यज्ञ और योग-यज्ञ, स्वाध्याय-यज्ञ बतलाए हैं ।
उपवास-यज्ञ और तपो-यज्ञ, नाना विधि यज्ञ कहाए हैं ॥
इन सारे यज्ञों में उत्तम, ज्ञानी का यज्ञ कहाता है ।
जिससे कर्मों का सारा फल, ज्ञानानल में जल जाता है ॥

ज्ञानी की आसक्ति है—और, धारणा और ।
श्रद्धा निष्ठा योग्यता—और, भावना और ॥

गाना

कहने को तो दुनिया में रहा करता है ज्ञानी ।
पर उसमें नहीं लीन हुआ करता है ज्ञानी ॥
काया से किया करता है वह काम जगत् के ।
मन से न कभी उनमें फँसा करता है ज्ञानी ॥
चन्दन में समायी हुई पावक है जिस तरह ।
कण कण में त्यों ही ब्रह्म लखा करता है ज्ञानी ॥
तिल चावलों से घृत से जो करते हैं लोग यज्ञ ।
उस यज्ञ को बेकार गिना करता है ज्ञानी ॥
है हव्य ब्रह्म, होता ब्रह्म, अग्नि ब्रह्म है ।
यों ब्रह्म—यज्ञ नित्य किया करता है ज्ञानी ॥
आनन्द शोक हर्ष द्वेष मन में न लाकर ।
संसार में निर्द्वन्द्व फिरा करता है ज्ञानी ॥
वह आप भी है ब्रह्म चराचर भी उसे ब्रह्म ।
बस ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म रटा करता है ज्ञानी ॥
इच्छाएँ, लालसाएँ, उसे कुछ नहीं होतीं ।
हाँ, ब्रह्म पे मर मर के जिया करता है ज्ञानी ॥

ज्ञानवान् जो जीव है, वही जगत् में धन्य ।
रहता है वह ब्रह्म से, होकर नित्य अनन्य ॥

अर्जुन, यह ज्ञान वस्तु वह है, जिससे अन्तर्पट खुलजाते ।
और सब पदार्थों के विशुद्ध, सच्चे स्वरूप हैं दिखलाते ॥
ज्ञानी बन जाने पर अर्जुन, तुम दिव्य दृष्टि पाजाओगे ।
सब में मुझ ही को देखोगे, सबको मुझ ही में पाओगे ॥
यह ज्ञान जिसे उत्पन्न होय, वह फिर चक्कर नहिं खाता है ।
कर्मों के फन्दे से छुटकर, मेरे पद तक आजाता है ॥

ज्ञान जिसे होजाय फिर, उसे न कुछ दरकार ।
ज्ञान जगत् में सार है, बाक़ी सब निस्सार ॥
कितना भी हो पाप का, गहरा पारावार ।
प्राणी ज्ञान जहाज़ में, होता उस से पार" ॥

व्याख्या यह भगवान् की, सुनकर सहित सनेह ।
और हुआ उत्पन्न एक, अर्जुन को सन्देह ॥
लगा पूछने इसलिए, वह एक प्रश्न महान् ।
चित देकर सुनने लगे, प्रश्न वही भगवान् ॥

पूछा उसने—"हे मधुसूदन, मैं जितना सुनता आता हूँ ।
उतना ही तत्त्व समझने में, रह रह कर उलझा जाता हूँ ॥
यह अन्तिम बात ज्ञान की जो, आपने मुझे समझायी है ।
उस से मैंने यह समझा है, बस ज्ञान बड़ा सुखदायी है ॥
लेकिन इस से पहले मुझको, जो गुर आपने बताया था ।
उसमें कर्मों के करने का, माहात्म्य खूब दर्शाया था ॥
इस से मेरे मन में अब यह, उत्पन्न हुई जिज्ञासा है ।
जो कर्म ज्ञान दो चीजें हैं, इन में पद किस का ऊँचा है ॥
पहले बतलाया कर्म बड़ा, फिर कहा आपने ज्ञान बड़ा ।
निश्चय कर कहिये दोनों में, है आखिर किसका मान बड़ा ॥
यदि ज्ञान बड़ा कहलाता हो, तो बस मैं ज्ञानी बन जाऊं ।
सब कर्मों का त्यागन करदूं, लड़ने से भी छुट्टी पाऊँ" ॥

अर्जुन के इस प्रश्न पर, मुसकाये गोपाल
समझाने उसको लगे, कह कर वचन रसाल ॥

बोले—"अर्जुन, मन बस में कर, जो तन से कर्म रचाते हैं ।
वे लोग कर्म—योगी, अथवा केवल योगी कहलाते हैं ॥
अब और लोग कुछ ऐसे हैं, जो ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं ।
और ज्ञान प्राप्त कर कर्मों का, करना बिल्कुल तज देते हैं ॥
यह ज्ञान प्राप्त कर कर्मों के, त्यागी जितने होजाते हैं ।
वे लोग जगत में रहकर भी, सब सन्यासी कहलाते हैं ॥

सन्यासी और योगियों के, यों जुदे-जुदे दो रस्ते हैं ।
पर जुदे जुदे होने पर भी, दोनों मोक्ष तक पहुँचते हैं ॥
इन दोनों में से योगी का, जो कर्म-मार्ग कहलाता है ।
वह कर्म-मार्ग ही उत्तम है, और अच्छा समझा जाता है ॥
'योगी का मार्ग नहीं सच्चा, सन्यास-मार्ग ही सच्चा है ।
यह झगड़ा और वादानुवाद, अर्जुन, अनुचित और बेजा है ॥
चाहे तो योग मार्ग से चल, फल इच्छा तज कर कर्म करे ।
और चाहे सन्यासी होकर, दे त्याग कर्म वन में विचरे ॥
पण्डित इन दोनों मार्गों का, माहात्म्य एकसा गाते हैं ।
दोनों से निश्चय मिले मोक्ष, यह साफ़ साफ़ बतलाते हैं ॥
पर बात वास्तव में यह है, सन्यासी बनना सहज नहीं ।
तन मन वाणी से कर्मों का, सचमुच में तजना सहज नहीं ॥

सन्यासी के वास्ते, है प्रधान जो ज्ञान ।
उसी ज्ञान की प्राप्ति को, चहिये कर्म-विधान ॥

जब ज्ञान प्राप्त करले मनुष्य, तब सन्यासी बन सकता है ।
सब कर्मों का त्यागन करके, पूरा त्यागी बन सकता है ॥
अधिकार उसे है सब प्रकार, चाहे जैसा साधन करले ।
जी चाहे तो जग में विचरे, चाहे बनवास ग्रहण करले ॥
पर अच्छा यह है ज्ञानी हो, कर्मों का करना तजे नहीं ।
बस इस उपाय से कर्म करे, जो फल से उनके बँधे नहीं ॥
इस विधि कर्मों के करने से, नर योगी माना जायेगा ।
कर्मों में लगा हुआ भी वह, सन्यासी ही कहलायेगा ॥
सच्चा सन्यास यही है बस, फल इच्छा तजकर कर्म करे ।
यह नहीं कि दे सब कर्म छोड़ और बिना कर्म जग में विचरे ॥

यह वह उपाय है जिससे कुछ, नहिं काम सृष्टि का पिछड़ेगा ।
और मोक्ष प्राप्त कर लेने का नहिं ढँग मनुष्य का बिगड़ेगा ॥
ज्ञानी होकर भी सखे, है आवश्यक कर्म ।
ज्ञानी का ही कर्म है, ठीक तरह का धर्म ॥
तुम यह पूछोगे ज्ञानी को, आवश्यकता क्या झगड़े की ।
जब ज्ञान मिला तब रही उसे, क्या ग़रज़ कर्म के रगड़े की ॥
इसका उत्तर यह है अर्जुन, यह जग है जैसा रचा हुआ ।
सो सब कर्मों के ही बल पर, है आदिकाल से रुका हुआ ॥
यदि जग का सारा जन-समाज, कर्मों को तज हट जायेगा ।
तो फिर यह जगत् घड़ी भर भी, चालू नहिं रहने पायेगा ॥
व्यापार सभी मिट जायेंगे, जीवन-धारा रुक जायेगी ।
पृथ्वी के कोने कोने में, सब उथल पुथल मच जायेगी ॥
अधिकार नहीं है प्राणी को, यों जग को ऊजड़ करने का ।
है उचित न ज्ञानी को कुछ भी, सृष्टि-क्रम गड़बड़ करने का ॥
यह सृष्टि-क्रम वह है जिसमें, जब गड़बड़ कुछ होजाता है ।
तो उसे मेटने को ईश्वर, अवतार स्वयं ले आता है ॥
इसलिए उचित है ज्ञानी को, पालन योगी का धर्म करे ।
संसार बनाये रखने को, सारे सांसारिक कर्म करे ॥
यह समझे जो कुछ करता हूँ, नहिं अपना काम बनाता हूँ ।
बस अपनी करनी से जग में, ईश्वर का काम चलाता हूँ ॥
ज्ञानीजन को देखकर, करता इस विधि कर्म ।
और दूसरे लोग भी, पालेंगे निज धर्म ॥
इसलिए कर्मयोगी होकर, जो अपना समय बिताता है ।
वह कर्मों के करने पर भी, सन्यासी माना जाता है ॥

सन्यासी कर्म छोड़ता है, फल से उनके बचने के लिए ।
योगी भी कर्म नहीं करता, फल-बन्धन में बंधने के लिए ॥
योगी जब यों सन्यासी की-नाईं फल से बच जाता है ।
तब अर्जुन, तुम्हें कर्मयोगी, होना फिर क्यों नहिं भाता है ?
सन्यासी रागद्वेष कभी, मन में अपने नहिं लाता है ।
योगी भी रागद्वेष छोड़, कर्मों में चित्त लगाता है ॥
सन्यासी और योगी में कुछ, अन्तर है तो यह अन्तर है ।
सन्यासी कर्म नहीं करता, योगी कर्मों में तत्पर है ॥
योगी सब कर्म इन्द्रियों से, करता है मन वश में करके ।
रहता है स्वस्थ प्रसन्न चित्त, सब हर्ष शोक मन से हरके ॥
खाना पीना चलना फिरना, सोना जगना व्यापार सभी ।
कठपुतली सम बस करता है, योगी दुनिया का कार सभी ॥
वह ऐसा माना करता है, मन की सम्पूर्ण वृत्तियों से ।
मैं कुछ भी काम नहीं करता, होते सब काम इन्द्रियों से ॥

इसी भावना में रहा, करता योगी तृप्त ।
जग में रहकर भी नहीं, होता जग में लिप्त ॥

पानी में जैसे कमल सदा, रहता पानी से बचा हुआ ।
त्योंही जग में रहकर योगी, रहता है जग से हटा हुआ ॥
योगी की तरह कर्म करके, प्राणी नहिं पुण्य पाप पाता ।
आसक्त कर्म में मन हो तो, बस पुण्य पाप है लगजाता ॥
इसलिए बड़ा पुरुषार्थ यही, मन लिप्त न होवे कर्मों में ।
बस रहें, इन्द्रियां रहें अगर, आसक्त कर्म के झगड़ों में ॥
नाना भोगों की धारा में, जिसका मन कभी न बहता है ।
वह पुरुष देह के मन्दिर में, निर्द्वन्द्व चैन से रहता है ॥

कर्मों का फल या स्वयं कर्म, ईश्वर ने नहीं बनाए हैं ।
यह गोरखधन्धे और फन्दे, सब माया ने फैलाए हैं ॥
कर्मों का भला बुरा कुछ फल, ईश्वर न किसी को देता है ।
और कभी किसी को पाप पुण्य, वह स्वयं न देता लेता है ॥
यह तत्त्व समझता है वह ही, जो मन को विमल बनाता है ।
और जिसकी आंखों आगे से, माया का पट हट जाता है ॥
जब सभी कर्म माया के हैं, तो मन इनमें जो फँसाएगा ।
यह निश्चय है वह माया के, चक्कर में पड़ चकराएगा ॥
इस चक्कर से बचना हो तो, बेलाग रहे सब झगड़ों में ।
हाथों पैरों से कर डाले, पर मन न फँसावे कर्मों में ॥

हो जाता जिस जीव को, इस प्रकार अभ्यास ।
कभी न फिर उस जीव के, दुःख फटकता पास ॥
रहता कुछ उसको नहीं, बाक़ी करना सिद्ध ।
योगीजन के नाम से, होता वही प्रसिद्ध ॥

चेष्टा उस योगी की सारी, और की और होजाती है ।
भूमण्डल की सब सृष्टि उसे, और की और दर्शाती है ॥
समदर्शी वह बन जाता है, कोठे उसके खुलजाते हैं ।
ब्राह्मण, चाण्डाल मनुज, या पशु एकी से उसे दिखाते हैं ॥
जग के नाना व्यापारों में, मन उसका नहिं घबराता है ।
कारण यह है वह कर्मों के, फल को न कभी ललचाता है ॥
जो कर्म सामने आते हैं, उनको न कभी तज देता है ।
लेकिन उनको कर्तव्य समझ, काया से बस करलेता है ॥
जड़ चेतन द्रव्यों में उसको, ईश्वर का तेज चमकता है ।
सब जीवों में सब समय उसे, ईश्वर का विम्ब झलकता है ॥

वह अपनेको भी ईश्वर से, क्षण भर नाहिं पृथक् समझता है ।
आपे को लखता ईश्वर में, आपे में ईश्वर लखता है ॥
वह कभी 'तत्त्वमसि' कहता है, 'सोहं' ध्वनि कभी लगाता है ।
और कभी ज्ञान गद्गद् होकर, यों झूम झूम कर गाता है ॥

गाना

सर्वत्र चराचर में, तू ही तू समाया है ।
चैतन्य में और जड़ में तेरी ही तो छाया है ॥
संसार में अगर बस, कुछ सार है तो तू है ।
जब ध्यान से देखा तो, यह ध्यान में आया है ॥
ऐश्वर्य—भोग पाया, तब कुछ नहीं था पाया ।
पाया है तब से सब कुछ, जब से तुझे पाया है ॥
ढूंढा तुझे बहुत कुछ, दर दर भटक भटक कर ।
अब भेद खुला तू तो, घट घट में समाया है ॥
जो मैं हूँ वही तू है, जो तू है वही मैं हूँ ।
सब तत्त्वदर्शियों ने, यह तत्त्व बताया है ॥
धन मेरा धाम मेरा, सुत मेरा नारि मेरी ।
इस मेरा मेरी में ही, बस जीव भुलाया है ॥
'मैं कर्म कर रहा हूँ, मैं जग चला रहा हूँ ।'
अभिमान है यह जिसने, सब जग को दबाया है ॥
'मेरामेरी' से बच कर, अभिमान जिसने तोड़ा ।
देखा तुझे उसी ने, औरों को दिखाया है ॥
हों कर्म इन्द्रियों से, फल भोगे जीव उनका ।
क्या खूब यह तमाशा, माया ने रचाया है ॥
निर्लिप्त हो गया हूं, अब कर्म यों करूँगा ।
जिससे न उनका फल कुछ, पाऊँ कि जो पाया है ॥
हे विश्व के विधाता, आवागमन छुड़ा दे ।
जीवन मरण ने "निर्गुण", भरपूर सताया है ॥

होजाते जिस जीव के, ऐसे विमल विचार ।
सच मानो उस जीव ने, जीत लिया संसार ॥
संसार उसी ने जीता है, दुख से वह ही बच पाया है ।
जिसको योगी होकर अर्जुन, कर्मों का करना आया है ॥

योगी के उर में ज्ञान— सूर्य, भरपूर उदय होजाता है ।
माया के अन्धेरे में वह, फिर ठोकर कभी न खाता है ॥
सब चीज़ों की सच्ची सूरत, दिखलाई उसको पड़ती है ।
मद—लोभ—मोह—क्रोधादिक की, बेड़ी उसको न जकड़ती है ॥
वह मनमें यही समझता है, दुनिया एक विस्तृत नदी है ।
इस नदी में जल के बदले, कर्मों की धारा बहती है ॥
कर्मों का यह धारा—प्रवाह, जो कर्म बहा ले आता है ।
वह बहकर आया हुआ कर्म, मेरे हाथों हो जाता है ॥
यों कर्मों के बह आने की, वह कभी न चाहत करता है ।
आपही आप आजाते हैं, तो कर देता नहिं डरता है ॥
लेकिन उन कर्मों में उसका, मन कभी नहीं तन्मय होता ।
इसलिए उसे उनके फलके, होने का भी नहिं भय होता ॥
जबतक वह जग में जीता है, बस योंही करता रहता है ।
सुख दुख जब जो आपड़ते हैं, सब धीरज धरकर सहता है ॥
इस भाँति बिताकर आयु सभी, जब देह छोड़ वह जाता है ।
तो फिर न लाख चौरासी के, चक्कर में पड़ने आता है ॥

योगी की और योग की—महिमा बड़ी अपार ।
कहा किन्तु संक्षेप में, मैंने तुमसे सार ॥
अर्जुन, कुछ संशय नहीं, उत्तम योगाभ्यास ।
अच्छा होसकता नहीं, उससे कुछ सन्यास ॥

सच तो यह है योगी जैसे, कर्मों को कर दिखलाता है ।
वैसे ही कर्मों का होना, सन्यास बखाना जाता है ॥
सच्चा सन्यास उसी का है, वह ही सच्चा सन्यासी है ।
जो कर्म करे पर कर्मों के, फल की इच्छा का त्यागी है ॥

सन्ध्या पूजा जप होम यज्ञ, यदि छोड़ दिए तो क्या छोड़ा ।
अर्जुन, छोड़ना तभी है जब, फल इच्छा से हो मुँह मोड़ा ॥
दिखलाने को तज दिए कर्म तो हुआ न सन्यासी त्यागी ।
हां, मन की ललक लालसाएँ, छुट जायँ तभी है सन्यासी ॥
इससे यह सिद्ध हुआ अर्जुन, सन्यास धर्म बस मन का है ।
मन से सन्यास सधगया तो बेकार साधना तन का है ॥
अर्जुन, तुम भी मन को साधो योगी की नाईं युद्ध करो ।
और यों सच्चे सन्यासी का, परिपालन धर्म विशुद्ध करो ॥

है अपने ही हाथ में, इसका पूर्ण उपाय ।
जो चाहे अर्जुन, वही, योगी बस बन जाय ॥

अपने ही उद्योगों द्वारा, जन अपना हित कर सकते हैं ।
चाहें तो ऊपर चढ़ सकते, चाहें नीचे गिर सकते हैं ॥
दुनिया में अपना आपा ही, है अपना शत्रु मित्र सच्चा ।
आपे को जिसने मित्र किया—कहलाता वह ही नर पक्का ॥
आपे को मित्र बनाने से, नर, जन्म सफल हो जाता है ।
आपे को शत्रु बनाने से, प्राणी गढ़हे में आता है ॥
आपा जिसकी मुट्ठी में है, वह ही सच्चा सिद्धात्मा है ।
कहने को आत्मा कहलाए, पर वास्तव में परमात्मा है ॥
यह परमात्मा पद ही सच्चा, योगी का पद कहलाता है ।
अभ्यास करे और लगा रहे तो फिर यह पद मिलजाता है ॥

है इस पद की प्राप्ति का, जो एक सरल उपाय ।
अर्जुन, उसी उपाय को, सुनलो कान लगाय ॥

क्रम क्रम से यह पद पाने को, इस तरह जीव अभ्यास करे ।
प्रतिदिन कुछ क्षण को नियम बना, एकान्त भवन में वास करे ॥

एकान्त भवन में बैठे तो, एक समथल आसन पर बैठे ।
कुश पर मृगछाला, छाला-पर—एक कपड़ा फैलाकर बैठे ॥
फिर मन को खींच सब तरफ़ से, निश्चय शरीर को कर लेवे ।
आंखों को मूंद नासिका के, कोने पर दृष्टि जमादेवे ॥
इस तरह समाधि-पूर्ण हो जब, तब उर में अपने भान करे ।
भगवत् की दर्शनीय सुन्दर, मनहर मूरति का ध्यान करे ॥
प्रतिदिन यह नियम चलाया तो, भीतरी नयन खुल जायेंगे ।
मैं कौन हूं ? क्या हूं ? कहां का हूं? यह भेद समझ में आयेंगे ॥
आनन्द बढ़ेगा नित्य नया, मन में थिरता आजायेगी ।
नाना विधि प्रबल विकारों से, बुद्धी छुटकारा पायेगी ॥
उस समय हृदय से एकोऽहं, एकोऽहं की ध्वनि आयेगी ।
प्राणी की प्रतिभा प्राणों में, गुन गुन करके यों गायेगी ॥

गाना

अहो ! क्या हो गया है मैं नहीं हूं ।
किसी ने कह दिया है मैं नहीं हूं ॥
पड़ा पर्दा था जब, तब मैं ही मैं था ।
जो अब पर्दा उठा है मैं नहीं हूं ।
यह आँखें हैं यह मुख है कान हैं यह ।
अरे, यह नासिका है मैं नहीं हूं ॥
जगत् का यह जो पसरा है पसारा ।
न जानें क्या बला है मैं नहीं हूं ।
समझता था कि हूँ मैं भी यहीं पर ।
पता अब यह लगा है मैं नहीं हूं ॥
कि चलना फिरना खाना पीना सोना ।
ये कोई कर रहा है मैं नहीं हूं ॥
जो करके कर्म उनका फल भी चाहे ।
वो कोई दूसरा है मैं नहीं हूं ॥

ॐ इति ॐ

पं० राधेश्यामजी कविरत्न द्वारा लिखित नाटक

वीर अभिमन्यु	१।।)
महर्षि-बाल्मीकि	१।।)
सती पार्वती	१।।)
ईश्वर-भक्ति	१।।)
परम-भक्त प्रह्लाद	१।।)
परिवर्तन	१।।)
श्रीकृष्ण-अवतार	१।।)
रुक्मिणी-मङ्गल	१=)
द्रौपदी-स्वयम्बर	१।।)
श्रवणकुमार	१=)
ऊषा-अनिरुद्ध	१=)
मशरिक़ी हूर	१।।)
भारत-माता	।=)
कृष्ण-सुदामा	।=)
शान्ति के दूत भगवान् श्रीकृष्ण	।=)
सेवक के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण	।=)
घण्टा-पन्थ	।=)

नोट—नाटकों में वीर अभिमन्यु, श्रवणकुमार, और मशरिक़ी हूर, उर्दू में भी छपकर तैयार हैं। दाम वही जो हिन्दी में हैं।

न्यू अल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी आफ बम्बई द्वारा खेले गये

असली व मुकम्मिल नाटक

भूलभुलैयाँ	१)	दिलफ़रोश	१)
चलता पुर्जा	१)	शरीफ़ बदमाश	१)
ख्वाबे हस्ती	१)	अछूता दामन	१)
ख़ूबसूरत बला	१)	हिन्दू विधवा	१=)

भारत व्याकुल थियेट्रिकल कम्पनी लिमिटेड आफ मेरठ द्वारा खेले गये

असली व मुकम्मिल नाटक

सेदोसितम	१=)	सम्राट् चन्द्रगुप्त	१=)

अन्य नाटक

महाराजा भर्तृहरि १=) पृथ्वीराज १।।)

भजन गाने व ग़ज़लें

श्रीराधेश्याम-गीताञ्जलि	१।।)
राधेश्याम विलास	१=)
राधेश्याम-कीर्त्तन	।।।)
राधेश्याम भजनमाला	१=)
प्राचीन भजनमाला	।=)
मोहन-कवितावली	।।।)
मुसाफिर की पाकेट बुक	।।।)
प्रेम-रत्नावली	≡)
निजानन्द प्रदीपिका	≡)
गृहिणी गीताञ्जलि	।=)
आनन्द-लहरी	–)।।
मीरा भजनमाला	।।।)
बोध-प्रकाशी	।=)
पद्य-पुष्पांजलि	–)।।
आरती संग्रह	–)।।
ग़ज़लों का गुलदस्ता	≡)
ग़जल-सागर	।।।)
पद-पुञ्ज	–)।।
मोहन भजनमाला	।=)
मोहन गीतावली	।)।।
मोहन संगीत शिक्षा	।=)
सीताराम-कीर्तन	।।।)

अमर-गीत-माला

मीठी गुञ्जार	≡)	मधुर मुरली	≡)
रसीली तान	≡)	कुसुम-कुंज	≡)
बसंतबाटिका	≡)	पद्म-पराग	≡)

अन्य पुस्तकें

भक्त स्त्रियाँ	।।)	अमरकोष	।=)
सतलड़ी	।।।)	पञ्चों का प्याला	।)।।
अजायब घर	।।।)	धनुर्विद्या	।।।)
प्रेत-लोक	१।।)	नौलखाहार	१।।)
ज्योतिष-प्रकाश	।।)	दृष्टांत महासागर	१।।)
वियोग-कथा	।=)	मोहन माला	≡)
हनुमानचालीसा	–)।।	सुन्दरकाण्ड	।=)

नक़ली किताबों से बचिये

हमारी रामायण और हमारे नाटकों का काफ़ी प्रचार देखकर लोगों ने उसी रंग और रूप की नक़ली किताबें छाप छापकर प्रकाशित करदी हैं। नक़्क़ालों की कई बरस की कोशिश का नतीजा यह है कि बाज़ार में नक़ली किताबों की भरमार है। यह नक़ली किताब)॥ में बुकसेलर को दी जाती है, जिसे बुकसेलर -) या =) या ≡) में बेचकर फ़ायदा उठाता है और इस प्रकार ग्राहक को धोखा दिया जाता है। ग्राहक जब ऐसी किताब को घर ले जाता है तो पछताता है। ग्राहक का ऐसी धोखेबाज़ी से बचाने के लिये अब हम अपनी हर एक किताब के ऊपर अपनी तस्वीर देने लगे हैं, जैसी कि इस किताब पर आप देख रहे हैं। अब आइन्दा से आप धोखा न खाइयेगा--

ध्यान रहे—

जिन किताबों पर—"राधेश्याम" या--"राधेश्याम वाशिष्ठ" या "तर्ज़—राधेश्याम" छपा रहता है, वह हमारे यहाँ की नहीं हैं। हमारे यहाँ की किताबों पर हमारे यह दस्तख़त भी रहते हैं। इन्हें पहचान लीजिये—

राधेश्याम

भवदीय—

राधेश्याम कथावाचक

मालिक—श्रीराधेश्याम पुस्तकालय व प्रेस, बरेली।

श्रीमद्भगवद्गीता संख्या ४

विराट्-रूप-दर्शन



प्रकाशक—
नेपाल गवर्नमेण्ट से 'कथावाचस्पति' की पदवी प्राप्त—
कीर्तन-कला-निधि, काव्य-कला-भूषण, श्रीहरि-कथा-विशारद, कविरत्न—

अध्यक्ष—श्रीराधेश्याम-पुस्तकालय, बरेली।

मूल्य ।)॥ आने

प०राधेश्यामजी कविरत्न लिखित नवीन कृति

कृष्णायन

जन्माष्टमी ।=) नन्द-महोत्सव ।=)
कमलीवाला कन्हैया ।=) गिरिवरधारी ।=)
रास-रहस्य ।=) कंस-वध ।=)
नन्द-नन्दन-वसुदेव-नन्दन ।=)

सम्पूर्ण सातों भाग एक सुन्दर जिल्द में छः आने अधिक देने पर अर्थात् तीन रुपए में मिलेंगे। डाक महसूल ।≡) अलग

रुक्मिणी-मंगल

(राधेश्याम रामायण की तर्ज में)

रुक्मिणी-जन्म ।=)
रुक्मिणी का कृष्ण प्रेम ।=)
रुक्मिणी की सगाई ।=)
रुक्मिणी का पत्र-लेखन ।=)
रुक्मिणी का गिरिजा-पूजन ।=)
रुक्मिणी का भ्रातृस्नेह ।=)
रुक्मिणी विवाह ।=)

सम्पूर्ण सातों भाग एक सुन्दर जिल्द में छः आने अधिक देने पर अर्थात् तीन रुपए में मिलेंगे। डाक महसूल ।≡) अलग

श्रीमद्भगवद्गीता

(राधेश्याम रामायण की तर्ज में)

अर्जुनमोह ।)॥ विराट्रूप-दर्शन ।)॥
आत्मा की अमरता ।)॥ जीव-ब्रह्म-विवेक ।)॥
कर्म-योग ।)॥ अर्जुन का समान ।)॥

नोट—सम्पूर्ण ६ भाग एक सुन्दर जिल्द में ।-) अधिक देने पर, अर्थात् २) में, मिलेंगे तथा जिल्ददार गुटका १।।)रु० में मिलेगा। डाक महसूल गुटका ।-) अलग अलग भाग पर ।=)।

दुर्गा—चरित्र

(राधेश्याम रामायण की तर्ज में)

महिषासुर-वध ।=)
शुम्भ का उत्पात ।=)
चामुण्डा का पराक्रम ।=)
रक्तबीज का लड़ाई ।=)
शुम्भ और निशुम्भ का वध ।=)

नोट—सम्पूर्ण ५ भाग एक सुन्दर जिल्द में छः आने अधिक देने पर अर्थात् २) में मिलेंगे, तथा जिल्ददार गुटका १।।) में मिलेगा। डाक महसूल गुटका ।-) अलग अलग भाग पर ।=)।

महाभारत

(राधेश्याम रामायण की तर्ज में)

भीष्म-प्रतिज्ञा ।=)
भीष्म-पराक्रम ।=)
पाण्डव-जन्म ।=)
पाण्डवों का बाल्य-काल ।=)
पाण्डवों की शस्त्र-परीक्षा ।=)
लाक्षागृह ।=)
बक-संहार ।=)
द्रौपदी-विवाह ।=)
सुभद्रा-हरण ।=
राजसूय-यज्ञ ।=)
द्रौपदी-वस्त्र-हरण ।=)
किरातार्जुन-युद्ध ।=)
यक्ष-सम्वाद ।=)
कीचक-वध ।=)
अभिमन्यु विवाह ।=)

अन्य कथायें

(राधेश्याम रामायण की तर्ज में)

नरसी की हुंडी ।)॥
श्रीसत्यनारायण की कथा ।=)
प्रह्लाद-चरित्र ।=)
ध्रुव-चरित्र ।=)
सुदामा-चरित्र ।=)
मोरध्वज-चरित्र ।=)
भर्तृहरि-चरित्र ।=)
महाराणा प्रतापसिंह ।=)
सत्यवादी हरिश्चन्द्र ।=)
सावित्री-सत्यवान् ।=)
मीराबाई ।=)
भक्त-अम्बरीष ।=)
अभिमन्यु की वीरता ।=)
गुरु गोविन्दसिंह ।=)
गुरु नानक ।=)
बुद्ध-चरित्र ।=)
द्रौपदी-लीला ।)॥
महाराजा दिलीप ।)॥
सती स्वयम्वर ।=)
सती मोह ।=)
महर्षि चरित्र (४) भाग १।।)



संख्या ४

श्रीमद्भगवद्गीता

लेखक—
प० रामनारायण पाठक

विराट्‌रूप-दर्शन

प्रकाशक—
नेपाल गवर्नमेण्ट से "कथावाचस्पति" की पदवीप्राप्त—
कीर्तन-कला-निधि, काव्य-कला-भूषण,
श्रीहरि-कथा-विशारद, कविरत्न—
प० राधेश्याम कथावाचक,
अध्यक्ष—
श्रीराधेश्याम-पुस्तकालय
बरेली

सातवीं बार १०००]   सन् १९४५ ई०   [मूल्य साढ़े चार आने

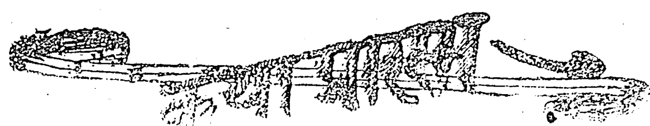
प्रिंटर—पं० रामनारायण पाठक, श्रीराधेश्याम-प्रेस, बरेली।

ॐ



प्रार्थना

विकल होगया जब पड़ी भीर भारी ।
इसी से हूँ आया शरण अब तुम्हारी ॥
उबारा है लाखों ही भक्तों को तुमने ।
उबारो मुझे आज है मेरी बारी ॥
कहाते हो दुख--द्वन्द्व--भञ्जन निरञ्जन ।
चलादो न फिर मेरे दुख पर भी आरो ?
वही करता हूँ जो कराती है माया ।
नहीं दोष है कुछ भी मेरा मुरारी !
जो हैं-हर्ष और शोक, मद, मोह, माया ।
सो प्रत्येक क्षण मेरी-करते हैं ख्वारी ॥
कभी इन विकारों से पीछा न छूटे ।
हरो इन विकारों को हे निर्विकारी !
जो अपने ही कर्मों का फल मैंने पाया ।
तो करुणा तुम्हारी हुई क्या बिहारी ?
अजामिल या गणिका सा पापी नहीं हूँ ।
मेरे पाप थोड़े ही हैं पापहारी !
इधर भी तुम्हीं हो उधर भी तुम्हीं हो ।
तुम्हीं हो जिधर देखता हूं निहारी ॥
हृदय को मेरे धाम अपना बनालो ।
तो मिट जाय 'निर्गुण' विपति मेरी सारी ॥



आगे को कहने लगे-फिर यों यदुकुलराय--
"अर्जुन, मैंने योग की दी बिधि तुम्हें बताय ॥
होना चाहे व्यक्ति जो, योगी योग-निधान ।
वह इस विधि से चित्त को, वश में करे सुजान ॥

जो योगी होने के निमित्त, इस बिधि को अंगीकार करे ।
वह प्राणी एक मर्यादा में, अपना आहार-बिहार करे ॥
अर्थात् अधिक भोजन न करे, और बिल्कुल भूखा भी न रहे ।
अत्यन्त अधिक सोवे न कभी, और बिल्कुल जगता भी न रहे ॥
खाना, पीना, सोना, जगना, एक दम न तजे इन कर्मों को ।
धीरे-धीरे वश में करले, सारे इन इन्द्रिय-धर्मों को ॥
ऐसा करने से प्राणी के, मन में थिरता आजायेगी ।
नानाबिधि भोगों की चाहत, मन को उसके न चलायेगी ।
दीपक हाथों में लेकर जब, प्राणी बाहर को जाता है ।
तब उसे हवा के झोंके से, मन देकर ख़ूब बचाता है ॥
उस समय चित्त उसका बिल्कुल, दीपक ही में लग जाता है ।
जैसा मन थिर तब होता है, वैसा न कभी हो पाता है ॥
लेकिन जो ऊपर की बिधि को, भरपूर काम में लाता है ।
उसका मन सदा सर्वदा को, वैसा ही थिर होजाता है ॥

जैसे मछली के चलने से, सागर नहिं उथल पुथल जाता ।
वैसे ही थिर होजाने पर, मन भी नहि चंचल हो पाता ॥
सागर-समान जब जिसका मन, गम्भीर धीर हो जाता है ।
अर्जुन, वह ही नर बस पूरा, पक्का योगी कहलाता है ।

योगी को वह ज्ञान भी, सहज प्राप्त होजाय ।
जिससे करनी का उसे, फल न कभी मिल पाय ॥
योगी के इस ज्ञान को, पाता वही प्रवीन ।
होता मेरा भक्त जो, कर मन को आधीन ॥
जिसने मेरी भक्ति की, बना वही निर्द्वन्द ।
कभी न उसको बांधता, फिर माया का फन्द"॥

अर्जुन बोला—"हे कृष्ण! मुझे, यह महाकठिन दिखलाता है ।
प्राणी का योगी बन सकना, सम्भव न समझ में आता है ॥
कारण यह है यह मन जो है, सो क्षण भर थिर नहिं रहता है ।
वह चञ्चल पवन-समान सदा, बस इधर-इधर को बहता है ॥
जिस तरह किसी में शक्ति नहीं, इतनी कि पवन को बांध सके ।
बस, उसी तरह यह शक्य नहीं, जो मन को कोई साध सके ॥
जब मन न सध सका तो कोई, योगी भी नहिं हो पायेगा ।
और फिर करनी के फल से भी, वह भला कहां बच जायेगा ॥
इससे है सहज उपाय यही, कर्मों को बिल्कुल करे नहीं ।
करने से भरना पड़ता है, सो करे नहीं और भरे नहीं" ॥

"यह भ्रम-पूर्ण विचार है", बोले कृष्ण सुजान ।
"कर्मों का यों त्यागना, उत्तम नहीं बिधान ॥

मन चञ्चल पवन—समान अगर, नाना मार्गों में जाता है ।
और नाना भोग भोगने को, प्रत्येक समय ललचाता है ॥

तब कर्मों का तज देना भी, कुछ लाभ नहीं पहुंचायेगा ।
कर्मों के फल के बन्धन से, प्राणी न कभी बच पायेगा ॥
कारण यह है कर्मों का फल, अर्जुन, जो कुछ भी होता है ।
वह सब का सब अपने मनकी, इच्छाओं से ही होता है ॥
यदि मन वश में होता है तब, इच्छाएँ भी नहिं करता है ।
कर्मों को करके भी प्राणी, कर्मों का फल नहिं भरता है ॥

[व्याख्यान— मन को वश में करके और फल की इच्छा न करके कर्मों के करने के विषय में किसी पंडित का कहा हुआ एक बड़ा अच्छा दृष्टान्त है । वह इस तरह कि किसी नगर में एक निर्धन पुरुष रहता था । उस निर्धन पुरुष ने नगर के अनेक अमीर आदमियों को उत्तम वस्त्र पहनते और अच्छा भोजन करते हुए देखा तो उसका भी मन अच्छा खाने और पहरने को ललचाया । मन की इच्छा तो उसकी इस प्रकार हुई पर उसके पास इतना धन नहीं था कि अच्छे-अच्छे कपड़े और उत्तम-उत्तम भोजन प्राप्त कर सकता । किन्तु धन न होने पर भी उसकी इच्छा कम न हुई; बल्कि दिन दूनी बढ़ती गयी । यहाँ तक कि उसने चोरी करके धन लाने और अच्छे-अच्छे कपड़े पहनने तथा बढ़िया-बढ़िया भोजन करने का मंसूबा बाँधा ।

एक दिन रात के समय वह नगरी के एक बहुत बड़े अमीर के यहाँ चोरी करने के प्रयोजन से घर के बाहर निकला । काले कपड़े से अपने आपको ढके हुए वह इधर उधर को देखता हुआ उक्त अमीर आदमी के घर की ओर चला । लेकिन जब वह अमीर आदमी के घर के पास पहुँचा तो पहरेदारों को जागता पाया । पहरेदारों को जागते देखकर उसकी हिम्मत न पड़ी और वह अपने घर को लौट पड़ा ।

जब वह घर को लौटा आरहा था तो उसे मार्ग में सामने से आते हुए राजा के चौकीदार मिले, जिन्होंने आधीरात को इसे अकेले घूमते देखकर सन्देह किया और पकड़ लिया । पकड़े जाने पर उसने चौकीदारों से कहा कि-"भाई, मुझे छोड़ दो । मैं आज दिनभर व्रत रखकर इस समय कामेश्वरी देवी के मन्दिर में दर्शनों को जारहा हूँ; और दर्शन करके सीधा घर को ही लौट जाऊँगा । किसी बुरे विचार से मैं घर के बाहर नहीं निकला हूँ ।"

मगर चौकीदारों ने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया । वे बोले कि—हम सब तुम्हारे साथ मन्दिर तक चलेंगे और फिर तुम्हें तुम्हारे घर पहुँचाकर हम तुमसे अलग होंगे । लाचार उसे यह बात मानना पड़ी, नगर के बाहर कोई दो कोस पर कामेश्वरी देवी के मन्दिर में उसे दर्शन करने जाना पड़ा । दर्शनों से लौटकर अपने घर में जब आगया तब चौकीदारों ने उसे छोड़ा ।

संयोग ऐसा हुआ कि थोड़े दिनों बाद उसे एक भयंकर रोग हुआ और उससे उसके प्राण निकलने लगे। अन्त समय में उसने विचारा कि मैंने कोई पाप नहीं किया है, केवल चोरी करने का एक बार विचार किया था सो कर नहीं पाया। इसलिए उसका कुछ बुरा फल मुझे नहीं भोगना पड़ेगा, बल्कि उस दिन कामेश्वरी देवी के दर्शन करने का मुझे कुछ न कुछ अच्छा ही फल मिलेगा। इन्हीं विचारों में उसके प्राण छूट गये।

जब प्राण छूट गये तो उसकी आत्मा यमलोक में पहुंची। वहां जब उसके पाप कर्मों का वृतान्त उसे सुनाया गया तो उसे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि चोरी करने का पाप तो उसके नाम लिखा है, पर देवी के दर्शन का पुण्य बिलकुल नहीं। उसने कारण पूछा तो उसे बताया गया कि हाथों पैरों से तुमने चोरी नहीं की तो क्या हुआ मन से तो की। यदि पहरेदार जागते न होते तो हाथों पैरों से तुम चोरी अवश्य करते। इसलिए चोरी तुमसे अवश्य होगयी। और देवी के दर्शन का तो तुमने मन में विचार ही नहीं किया था। चौकीदारों से बचने के लिए तुम केवल पैरों से देवी के मन्दिर में गये और हाथों से प्रणाम करके जिह्वा से देवी का स्तोत्र पढ़ दिया। मन तुम्हारा देवी की उपासना का बिल्कुल उस समय इच्छुक न था। परिणाम यह हुआ कि उसे चोरी का दण्ड भुगतना पड़ा।

इस दृष्टान्त से यह स्पष्ट है कि मन ही मुख्य है। मन में यदि पाप मौजूद है तो हाथों पैरों से पाप न करने पर भी उसका फल मिलेगा। इसलिए हाथ पैर से कर्म करना छोड़कर भी यदि मन निर्विकार नहीं किया गया तो पाप पुण्य प्राणी मन से भी करता रहेगा और उनके फल पाता रहेगा। 'कर्मों को छोड़कर उनके फल नहीं भोगेगा' यह विचार इस रीति से भ्रम-पूर्ण है।

इसीलिए मन को करे, वश में भली प्रकार।
योगी ज्ञानी हो मनुज, किया करे व्यवहार॥
यद्यपि यह सच बात है, सहज न मन वश होय।
पर विराग अभ्यास से, सध जाता है सोय"॥

अर्जुन ने पूछा—"कृष्ण, मुझे, यह तो कहिए इच्छा भी हो!
और मन को भी वश करने की, प्राणी में तत्परता भी हो॥
लेकिन चञ्चल होने से मन, पूरा पूरा सध पाय नहीं।
और उधर यत्न करते करते, जीवन समाप्त हो जाय कहीं॥
तो सारा यत्न व्यर्थ रहकर, कुछ सफल नहीं हो पायेगा।
होकर न कहीं का भी प्राणी, बीच में टंगा रह जायेगा॥

जब ऐसा है तो किस प्रकार, योगी कोई बन सकता है ?
किस तरह योग के साधन में, उसका विचार ठन सकता है"?
इसके उत्तर में लगे, कहने यों नन्दलाल ।
"अर्जुन,कुछ चिन्ता नहीं, हो यदि ऐसा हाल ॥
यदि योग-सिद्धि में प्राणी की, सब आयु पूर्ण होजाती है ।
तो आत्मा उसकी इधर-उधर, बिल्कुल न भटकने पाती है ॥
होता यह है उस प्राणी को, बस स्वर्ग सहज मिल जाता है ।
वह दीर्घकाल तक सुखपूर्वक, आवास स्वर्ग में पाता है ॥
जब स्वर्ग भोग चुकती है तब, आत्मा उसकी फिर आती है ।
और श्रेष्ठ प्रसिद्ध घराने में, वह जन्म जगत् में पाती है ॥
यों जन्म प्राप्त करके उसकी, इच्छा फिर वह ही होती है ।
योगी बनने के ही निमित्त, चेष्टा फिर उसकी होती है ॥
यों एक जन्म में नहीं सधे, तो दुसरे में सध जाता है ।
जो पुरुष लगा रहता है वह, योगी एक दिन बन जाता है ॥
अर्जुन, जो प्राणी योगी है, वह उत्तम है सन्यासी से ।
उत्तम है सदा तपस्वी से, और यज्ञों के अनुरागी से ॥
योगी में भी वह उत्तम हैं, जो भक्त मेरा कहलाता है ।
मुझको अपना करलेता है, और आप मेरा हो जाता है ॥
अर्जुन, अब तुम भी बनो, मेरे योगी भक्त ।
योगी उत्तम है वही, जो मुझमें अनुरक्त ॥
योगी बन जाने की जग में, होती है सबको चाह नहीं ।
जो करें योग के लिए यत्न, वह लाखों में दो एक कहीं ।
इन लोगों में से भी अर्जुन, कितने ही नर रह जाते हैं ।
पूरे और पक्के योगी तो, बस एकी दो हो पाते हैं ॥

सच्चा योगी वह है अर्जुन, जो सारा भेद जानता है ।
अपना मेरा और दुनिया का, सच्चा स्वरूप पहचानता है ॥
अब मैं अपना और दुनिया का, अर्जुन, स्वरूप बतलाता हूं ।
जिससे तुम योगी बन पाओ, वह ज्ञान तुम्हें समझाता हूं ॥
पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, वायु बुद्धी, मन, अहङ्कार भी है ।
निचले दर्जे की प्रकृति मेरी, अर्जुन यों आठ प्रकार की है ॥
अब मेरी ऊंचे दर्जे की, जो प्रकृति बखानी जाती है ।
वह प्रकृति जीव है काया में, जो जीवात्मा कहलाती है ॥
यह निचले ऊँचे दर्जे की, मिलती है मेरी प्रकृति जभी ।
जड़ चेतन सचर अचरवाला, बन जाता है यह जगत तभी ॥
यह जड़ चेतन का जगत् सभी, मुझमें से बाहर आता है ।
और फिर कुछ समय बाद अर्जुन, मुझ ही में लय होजाता है ॥
माला के सुभग मोतियों में, ज्यों तार पिरोया रहता है ।
त्यों ही मेरा सारे जग में, अस्तित्व समाया रहता है ॥
मैं सबके ऊपर रहता हूं, मेरे ऊपर कोई न कहीं ।
मैं सबका मालिक हूं लेकिन, मेरा मालिक कोई भी नहीं ॥

होता सबका अन्त पर, मेरा होय न अन्त ।
व्यापक हूं मैं सब जगह, सबमें सदा अनन्त ॥

वेदों में ओङ्कार जो है, अर्जुन, मैं ही कहलाता हूं ।
मिट्टी में गन्ध और जल में रस मैं ही माना जाता हूं ॥
मेरी ही ज्योति चमकती है, चन्द्रमा सूर्य और तारों में ।
मेरा ही तेज दमकता है, आगी के लाल अंगारों में ॥
आकाश में शब्द भी मैं ही हूं, पुरुषार्थ भी मैं हूं पुरुषों में ।
हूं तपस्वियों में तप मैं ही, और प्राण जगत् के जीवों में ॥

इस सकल सृष्टि का बीज हूं मैं, और बल हूं सब बलवानों में ।
तेजस्वी में हूं तेज भी मैं, और काम विशुद्ध कामियों में ॥
सात्त्विक, राजस और तामस गुण, तीनों मैंने उपजाये हैं ।
लेकिन मैं उन में रहूं नहीं, यद्यपि मुझमें वे समाये हैं ॥
इन सात्त्विक, राजस और तामस गुण में ही सब जग फूला है ।
दिन रात गुणों में फँसा हुआ, रहता मुझको बस भूला है ॥
यह गुण मेरी माया के हैं, जो प्रकृति मेरी कहलाती है ।
और उन्हीं गुणों की रस्सी में, सब जग को नाच नचाती है ॥
इस रस्सी से बच जाने का, बस एकमात्र जो साधन है ।
अर्जुन, वह मेरा भक्ति-सहित, और प्रेम-सहित आराधन है ॥

होते चार प्रकार से, जीव मेरे अनुरक्त ।
अर्जुन, हैं इससे मेरे, चार तरह के भक्त ॥

पहले वे हैं जो रोगों से, भय पाकर मुझे बुलाते हैं ।
दूसरे हैं वे जो धन-धरणी पाने को मुझे रिझाते हैं ॥
तीसरे ज्ञान के इच्छुक हो, गुण मेरा गाया करते हैं ।
चौथे वे हैं जो योगी बन, मुझ तक आजाया करते हैं ॥
इन चारों में सबसे पिछला, बस योगी-भक्त मुझे भाता ।
अर्जुन, वह एक न एक दिवस, निश्चय मुझतक है आजाता ॥
योगी अपने मन से मुझको, माना करता परमात्मा है ।
और मैं यह माना करता हूं, योगी बस मेरा आत्मा है ॥
लेकिन जग के अधिकांश जीव, माया के चक्कर में आकर ।
नाना देवों को भजते हैं, नाना भोगों की इच्छा कर ॥
मुझको तज दूसरे देवों में, जब जनता ध्यान लगाती है ।
तब उन देवों में ही उसकी, श्रद्धा दृढ हो जम जाती है ॥

जिस मनोकामना को लेकर, जन उनमें भक्ति बढ़ाते हैं ।
उस मनोकामना को अपनी, वे निश्चय ही पा जाते हैं ॥
लेकिन यह मनोकामना सब, यद्यपि मुझसे दी जाती है ।
पर जनता यही समझती है, वह सब देवों से आती है ॥
मनोकामना किन्तु यह, सदा न रहती साथ ।
रह जाता फिर एक दिन, प्राणी खाली हाथ ॥
इसलिए कामना पाने की, अभिलाषा जो चित धरते हैं ।
और उस अभिलाषा से पूजा, नाना देवों की करते हैं ॥
अर्जुन, वे थोड़े दिन तक ही, ऐश्वर्य भोग बस पाते हैं ।
उन भोगों का होते ही अन्त, बस ज्यों के त्यों रह जाते हैं ॥
फिर और बात यह होती है, वे लोग न मुझतक आ पाते ।
बस जिनकी पूजा करते हैं, उनहीं तक जाकर रह जाते ॥
जो मूर्ख और अज्ञानी हैं, वे ठीक नहीं जाना करते ।
आंखों को दीख पड़े ऐसा, वे रूप मेरा माना करते ॥
वास्तव में मेरा रूप कभी, आंखों आगे नहीं आता है ।
है माया-पट में ढका हुआ, इसलिए नहीं दिखलाता है ॥
मैं पैदा कभी नहीं होता, और मरता भी हूं कभी नहीं ।
आरम्भ नहीं होता मेरा, होता न अन्त भी कभी कहीं ॥
जो बीत चुका या बीत रहा, या आगे बीतेगा सोई ।
मैं सदा जानता रहता हूं, पर मुझे न जान सके कोई ॥
अनुराग द्वेष और हर्ष, शोक, इनमें संसार भुलाया है ।
इसलिए मुझे उसने अबतक, पहचान जान नहिं पाया है ॥
पहचाना करते वही मुझे, जो मुझसे प्रेम बढ़ाते हैं ।
श्रद्धा से अपने तन-मन की, जो मुझ पर भेंट चढ़ाते हैं ॥

ऐसे मेरे भक्त जो, होते श्रद्धावान ।
मोक्ष-प्राप्ति के हेतु वे, करते मेरा ध्यान ॥
अधिदेह और अधियज्ञ तथा, अधिदैव जान पाते हैं वे ।
अध्यात्मकर्म और ब्रह्म है क्या, यह मर्म समझ जाते हैं वे ॥
इन बातों का सब तत्व जान, वे मुझमें तन्मय रहते हैं ।
और अन्त समय मुझमें रत हो, मुझको निस्संशय लहते हैं ॥

अर्जुन ने श्रीकृष्ण से, पूछ उठा यह मर्म ।
'कृष्ण, मुझे बतलाइये, ब्रह्म है क्या? क्या कर्म ?
होता है अध्यात्म क्या, क्या अधिभूत कहाय ?
कहलाता अधिदैव क्या? कहिये सब समझाय ?
वस्तु कौन अधियज्ञ है, किसे कहें अधिदेह ?
समझादें यह आप तो, मिटे मेरा सन्देह" ?

गोपी-वल्लभ बोले—"अर्जुन, जो नाश न होने पाता है ।
वह अविनाशी और अमर तत्त्व, इस जग में ब्रह्म कहाता है ॥
जिस चीज का जो होता स्वभाव, अध्यात्म वही माना जाता ।
जग रचना का व्यापार जो है, बस वही कर्म है कहलाता ॥
मिटजाना गुण है जो जग का, अधिभूत वही जाना जाता ।
जीवों में जो चेतनता है, अधिदैव वही बस कहलाता ॥
अधियज्ञ यज्ञ का स्वामी है, सो अर्जुन मैं कहलाता हूं ।
सब देहों में अधिदेह एक, बस मैं ही माना जाता हूं ॥
जो मुझे याद करता करता, प्राणी शरीर तज देता है ।
वह सीधा मुझतक आकरके, निश्चय मुझको पालेता है ॥
प्राणों को तजते समय जीव, जिसमें भी ध्यान लगाते हैं ।
परलोक पहुंचकर उसको ही, वे जीव अन्त में पाते हैं ॥

इसलिए उचित यह है अर्जुन, तुम मेरी ही नित भक्ति करो ।
और फिर निश्चिन्त चित्त होकर, संग्राम करो मन में न डरो ॥

मुझमें चित्त लगाय कर, जपते मेरा नाम ।
उन्हें सताते हैं नहीं, लोभ-मोह-मद-काम ॥

उनको मन के नाना विकार, आकर फिर नहीं सताते हैं ।
वे राग-द्वेष या सुख-दुख से, विचलित नहिं होने पाते हैं ॥
दुनिया के व्यापारों में फिर, मन उनका नहिं फँस पाता है ।
ऊपर से कर्म किया करते, भीतर से चित हट जाता है ॥
सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, यह युग जो चार कहाते हैं ।
सो चारों आपुस में जुड़कर, चौकड़ी एक कहलाते हैं ॥
ऐसी हजार चौकड़ी होंय, तो ब्रह्मा का दिन बन पाता ।
और इतना ही अतिदीर्घकाल, ब्रह्मा की रात कहा जाता ॥
ब्रह्मा का दिन जब होता है, तब दुनिया यह रच जाती है ।
फिर जबकि रात होने लगती, तब सबकी सब मिट जाती है ॥
यह होना मिटना दुनिया का, ऐसे ही चलता रहता है ।
प्राणी भी होने मिटने की, झंझटें सदा ही सहता है ॥
लेकिन अर्जुन जो जीव कभी, मुझतक आजाने पाते हैं ।
फिर वे होने और मिटने को, जग में न लौटकर आते हैं ॥
बस मेरे धाम में रहते वे, बन्धन से छुटकारा पाकर ।
यह धाम मेरा वह है अर्जुन, लौटता न जीव जहां आकर ॥

बतलाता हूं अब तुम्हें, अर्जुन मैं वह ज्ञान ।
सहज नहीं जिस ज्ञान की, होती है पहचान ॥

सच तो यह है मैंने अर्जुन, यह सारा जगत् रचाया है ।
मेरे अव्यक्तरूप में से, माया ने उसे बनाया है ॥

मुझमें हैं जग के सब पदार्थ, पर मैं उनमें रहता हूं नहीं ।
जब सब जग से न्यारा हूं मैं, तो जग में रह सकता हूं कहीं ?
जिस तरह वायु सारे जग में, सब समय विचरती रहती है ।
लेकिन उसका जो ठिकाना है, वह ऊपर को आकाश ही है ॥
बस, उसी तरह सब चीजों का, पालन-पोषण मैं करता हूं ।
लेकिन अपने इस धन्धे में, मन को न फँसाकर धरता हूं ॥
ब्रह्मा की रात बीतने पर, माया मेरी जग जाती है ।
कर्मानुसार बहु जीवों को, लेकर वह जगत् रचाती है ॥
बस, माया सब कुछ करती है, मैं करता कुछ भी कर्म नहीं ।
वह जो कुछ करती है उससे, होता न मुझे सुख-दुःख कहीं ॥
मन में कुछ राग व द्वेष न ला, मैं सब कुछ देखा करता हूँ ।
आसक्त नहीं होता उसमें, इसलिये न फल कुछ भरता हूँ ॥
लेकिन अज्ञानी लोगों को, होती न ज्ञात यह बात कभी ।
वे यही जानते,—करता हूँ उनकी नाईं मैं कर्म सभी ॥
उनको यह ध्यान नहीं रहता, मैं इस जग में परमेश्वर हूँ ।
चर-अचर सृष्टि का स्वामी हूँ, सब भुवनों का भुवनेश्वर हूँ ॥
अज्ञानी ऐसे सभी, रहते सदा मलीन ।
नाचा करते नाच वे, माया के आधीन ॥
आशायें उनकी व्यर्थ रहें, सब कर्म व्यर्थ हो जाते हैं ।
वे ज्ञान-भ्रष्ट और बुद्धि-भ्रष्ट, होकर सद्गति नहिं पाते हैं ॥
सद्गति तो उनही जीवों को, मिलती है अर्जुन जीवन में ।
जो मुझे समझ सबका स्वामी, भजते हैं मुझको निज मन में ॥

❀ गाना ❀

प्राप्ति होती है उन्हीं जीवों को मेरे धाम की ।
प्रेम से माला जपा करते जो मेरे नाम की ॥

जो शरण आते हैं मेरी, छोड़ जग–जंजाल की ।
उनको फिर होती न बाधा क्रोध मद या काम की ॥
दे दिया हो अपना सब कुछ जिसने मेरे हाथ में ।
उसको कुछ चिन्ता नहीं फिर कर्म के परिणाम की ॥
मुझको जानें मुझको मानें मुझको पूजें हर समय ।
बस, यही सूरत है मन की शान्ति की विश्राम की ॥
विश्व में रहकर रहे निर्लिप्त जो व्यवहार में ।
मिलती है "निगुण" उसी को शान्ति मोक्षाराम की ॥

—०—

है जो कुछ इस विश्व में, अद्भुत और अनूप ।
माया के पट से ढका, है मेरा ही रूप ॥
मैं यज्ञ भी हूँ यज्ञाग्नि भी हूँ, यज्ञों का हव्यमन्त्र भी हूँ ।
हूँ सबका माता और पिता, तन्त्रों के बीच स्वतन्त्र भी हूँ ॥
सबकी गति हूँ सबकी मति हूँ, सबका स्वामी और त्राता हूं ।
जो शरण मेरी आजाते हैं, उनको निश्चय अपनाता हूं ॥
उत्पन्न मुझी से होते सब, मुझमें ही लय होजाते हैं ।
धन, धाम, धान्य धरणी के सुख, प्राणी मुझसे ही पाते हैं ॥
मैं जल बरसाया करता हूं, और फिर रोका भी करता हूं ।
जैसी आवश्यकता जब हो तब वैसा करता धरता हूं ॥
अमृत, विष, सत् और असत् सभी, अर्जुन, मुझको ही मानो तुम ।
सबके पीछे सबकी जड़ में, बस मुझको ही पहचानो तुम ॥
जो लोग यज्ञ आदिक करके, सन्तुष्ट बनाते देवों को ।
और नाना करते यज्ञों से, सुख मिले उन्हें और जीवों को ॥
अर्जुन, वे लोग कुछ समय तक, बस स्वर्गभोग ही पाते हैं ।
सब स्वर्गभोग होजाने पर, फिर मर्त्यलोक में आते हैं ॥
लेकिन जो अपने यज्ञों का, सब फल मुझको दे देते हैं ।
वे प्राणी मुझतक आकर के, बस मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं ॥

अब केवल इतनी बात रही, देवता यज्ञ नहीं पायेंगे ।
तो सुख सम्पति देकर जगको, सम्पन्न न कभी बनायेंगे ॥
सो यह विचार कुछ ठीक नहीं, सब जीव मुझी से पाते हैं ।
भोजन और वस्त्र आदि सबको, मुझसे पहुंचाये जाते हैं ॥
मैं अभी कह चुका हूं तुमसे, होते यज्ञादिक जितने भी ।
वे लोगों के सब किये कृत्य, सब पाया करता हूं मैं ही ॥

जिन भोगों की प्राप्ति को, यज्ञ रचाते लोग ।
देता हूं मैं ही उन्हें, वे नाना विध भोग ॥

बस, बात यहां इतनी ही है, जब मुझको नहीं रिझाते हैं ।
तब भोग प्राप्त करके भी वे, प्राणी मुझतक नहिं आते हैं ॥
जाते हैं उन ही देवों तक, जिनके वे भक्त हुआ करते ।
जिनको सन्तुष्ट बनाने को, वे नाना यज्ञ रचा करते ॥
जो करते देवों को प्रसन्न, वे देवों के ढिग जाते हैं ।
पितरों के प्रेमी पितरों को, जा पितर लोक में पाते हैं ॥
अनुराग जिन्हें है भूतों से, भूतों को प्राप्ति उन्हें होती ।
जो जिनके प्रेमी हैं उन ही देवों की प्राप्ति उन्हें होती ॥
तो अर्जुन, यद्यपि जीवों के, सब सुकृत मुझे मिल जाते हैं ।
लेकिन भावना न होने से, सब जीव मुझे नहिं पाते हैं ॥
जो मुझे प्राप्त कर लेने की, भावना हृदय में रखता है ।
वह भक्त मेरा निश्चय जानो, बस मुझे प्राप्त कर लेता है ॥
मुझको पाने के लिए नहीं, यज्ञों की आवश्यकता है ।
अर्जुन, बस एक प्रेम ही से, प्राणी मुझको पासकता है ॥
हो प्रेम तो मैं बस पान फूल से ही प्रसन्न होजाता हूं ।
कुछ न हो जीव पर प्रेम हो बस, तो मैं उसतक खिंच आता हूं ॥

गाना

वृथा धन वैभव सारा है, प्रेम ही मुझको प्यारा है ।
चाहे जितने मूल्य का दे कोई उपहार ।
किन्तु न दे जो प्रेम से तो न मुझे स्वीकार ॥
प्रेम से सब कुछ हारा है, प्रेम ही मुझको प्यारा है ॥
वश में अपने कर सके मुझे न कोई वीर ।
प्रेमी मेरे पांव में डाल सके जन्जीर ॥
प्रेम पर वारा न्यारा है, प्रेम ही मुझको प्यारा है ॥
मुझ पर ही निर्भर रहे, ले मेरा ही नाम ।
मिलता है उस जीव को, निश्चय मेरा धाम ॥
वही पाता छुटकारा है, प्रेम ही मुझको प्यारा है ॥
फल सारा देकर मुझे, करता जो नर कर्म ।
पालन करता है वही, जग में सच्चा धर्म ॥
उसी ने धर्म संवारा है, प्रेम ही मुझको प्यारा है ॥
प्रेमी होकर जो मेरा, है मुझमें अनुरक्त ।
बस वह मेरा भक्त है, और मैं उसका भक्त ॥
भक्त ही मुझे दुलारा है, प्रेम ही मुझको प्यारा है ॥

—०—

अर्जुन, अब तुम भी बनो, मेरे प्रेमी भक्त ।
होजाओ सब भूलकर मुझमें ही अनुरक्त ॥
खाना-पीना-सोना-जगना, लेना-देना-जो करो कभी ।
प्रतिदिन का वह व्यापार-कार्य, अर्पण कर डालो मुझे सभी ॥
इन कर्मों का फल क्या होगा, यह चिन्ता मन में मत लाओ ।
सब छोड़ भरोसे पर मेरे, तुम सभी कर्म करते जाओ ॥
जो मेरे भरोसे रहता है, मैं उसको सदा बचाता हूं ।
जो मुझको अपना करता है, मैं भी उसको अपनाता हूं ॥

जो भक्ति किया करते मेरी, मैं उनमें भेद नहीं करता ।
वह ऊँचा है या नीचा है, कुछ इसका ध्यान नहीं करता ॥
जो मुझको भजने लगें न वे फिर रहते पापी पामर हैं ।
द्विज शूद्र नारि वेश्यादिक भी, हों भक्त तो मुझे बराबर हैं ॥
अर्जुन, तुम मर्त्यलोक में हो, यह मर्त्य लोक अति दुस्तर है ।
नाना-विध क्लेशों कष्टों का, आकर ये लोक सरासर है ॥
उन सब क्लेशों से बचने को, बस भक्त मेरे तुम बन जाओ ।
सब विषयों से मन अलग खींच, मेरी सेवा में ले आओ ॥
सुख-दुख 'शम-दम' उत्पत्ति-नाश, सन्तोष-अहिंसा जीवों में ।
तप दान-ज्ञान-यश-अयश-बुद्धि-भय-अभय समस्त मनुष्यों में ।
अर्जुन, जितने भी भाव हैं यह, सबको ही मैं उपजाता हूं ।
इसलिए सृष्टि का एकमात्र, कारण मैं ही कहलाता हूं ॥
सप्तर्षि—सहित मन्वन्तर में, जो मनु संसार चलाते हैं ।
वे भाव हैं मेरे ही मन के, मुझसे उपजाये जाते हैं ॥
मेरी इस प्रभुता महिमा का, जो प्राणी तत्त्व समझ जाते ।
वे ही इस जग में ज्ञानी हो, सच्चे योगी हैं बन जाते ॥
सबका कर्ता सबका स्वामी, जो समझ मुझे अति श्रद्धा से ।
मुझमें ही ध्यान लगा निशिदिन, भजते मुझको अति निष्ठा से ॥
उनके विचार मन बुद्धि सभी, यों अमल विमल बनजाते हैं ।
जिससे वे बिना परिश्रम के, मेरे समीप आपाते हैं" ॥

अर्जुन ने भगवान् के, सुने वचन चितलाय ।
फिर बोला यों कृष्ण से, विनय-सहित शिर नाय ॥
"परम ब्रह्म पावन परम, आदिपुरुष श्रीमान् ।
जगन्नाथ जगदीश हैं, आप स्वयं भगवान ॥

हैं विभूतियां आपकी, जितनी अद्भुत सोय ।
जानें उनको आप ही, और न जानें कोय ॥
कहिये इससे आप ही, उन सबका विस्तार ।
जिससे मैं भी पा सकूँ, कुछ कुछ उनका पार ॥
चाहूं तो भी आपकी, कैसे हो पहचान ?
जगकी किस २ वस्तु में, धरूँ तुम्हारा ध्यान ?"

यह सुनी प्रार्थना अर्जुन की, तब कृष्णचन्द्र ने सुख पाया ।
अपनी विभूतियों का स्वरूप, क्रम क्रमसे फिर यों समझाया ॥
बोले—"अर्जुन, जब पूछा है, तब कहकर तुम्हें बताता हूं ।
मेरी विभूतियां हैं अनन्त, जिनमें से मुख्य बताता हूं ॥
सब जीवों में आत्मा हूं मैं, और सबका आदि अन्त हूं मैं ।
ऐश्वर्य जगत् में हैं जितने, सबका स्वामी भगवन्त हूं मैं ॥
बारह आदित्यों में से जो आदित्य विष्णु कहलाता है ।
वह विष्णु रूप मेरा ही है, मुझ ही से शोभा पाता है ॥
सब तेजधारियों में अर्जुन, मैं सूरज माना जाता हूं ।
जो उनचास हैं पवन यहां, उनमें मारुत कहलाता हूं ॥
आकाश के उज्ज्वल तारों में, शीतल और सुन्दर चन्द्र हूं मैं ।
वेदों में हूं मैं सामवेद, देवों में देव इन्द्र हूं मैं ॥
मन समझो मुझे इन्द्रियों में, चेतनता जानो जीवों में ।
ग्यारह रुद्रों में से शङ्कर, समझो कुवेर बस यक्षों में ॥
मैं आठों वसुओं में पावक, पुनि मेरु हूं सात पर्वतों में ।
अर्जुन, मैं सुभग बृहस्पति हूं, विद्वान् पुरोहित गुरुओं में ॥

सेनापतियों में मुझे, समझो स्कन्दकुमार ।
जलाशयों में सिन्धु हूं, मैं गम्भीर अपार ॥

मैं हूँ वाणी में ओंकार, भृगु ऋषि हूँ सब महर्षियों में ।
जप-यज्ञ हूँ सारे यज्ञों में, हिमगिरि हूँ अचल वस्तुओं में ॥
वृक्षों में पीपल हूँ अर्जुन, नारद देवर्षिगणों में हूँ ।
गन्धर्व चित्ररथ भी मैं ही, कहलाता गन्धर्वों में हूँ ॥
सिद्धों में कपिल मुझे समझो, घोड़ों में उच्चैश्रवा मुझे ।
हाथियों में समझो ऐरावत, दीपक में समझो प्रभा मुझे ॥
मनुजों में बस राजा हूँ मैं, हूँ वज्र सभी हथियारों में ।
हूँ कामदेव मैं सन्तति के मिषसे रति करने वालों में ॥
सर्पों में वासुकि सर्प हूँ मैं, हूँ शेषनाग मैं नागों में ।
पितरों में हूँ अर्यमा पितर, यम हूँ सब संयमवालों में ॥
जल में रहते जो देव सदा, उन में मैं वरुण कहाता हूँ ।
दैत्यों में सुन्दर मतिवाला, प्रह्लाद बखाना जाता हूँ ॥
नाशक पदार्थों में प्रधान, सबका नाशक बस काल हूँ मैं ।
पक्षियों में श्रेष्ठ गरुड हूँ मैं, पशुओं में सिंह कराल हूँ मैं ॥
गौओं में हूँ मैं कामधेनु, और पवन तीव्र गतिवालों में ।
हूँ रामचन्द्र सा धनुधारी, धनु धारण करने वालों में ॥

सकल सृष्टि का एक मैं, आदि मध्य अवसान ।
मत्स्यों में समझो मुझे, अर्जुन मकर-समान ॥

नदियों में गंगा मैं ही हूं, अध्यात्म हूं सब विद्याओं में ।
हूं मैं ही वाद–विवाद मुख्य, वादानुवाद कर्ताओं में ॥
अक्षरों में "अ" अक्षर हूं मैं, हूं द्वन्द्वसमास समासों में ।
घटिका पल वाला समय हूं मैं, जो व्यापक युग युगान्तरों में ॥
ब्रह्मा हूं चार मुखोंवाला, वह मृत्यु हूं जो सब खाती ।
मरकर जो प्रजा जन्म लेती, वह प्रजा मुझसे है आती ॥

नारियों में समझो स्मृति मुझको धृति-क्षमा कांति और श्री समझो
समझो मुझको मेधा शक्ती और मुझको ही वाणी समझो ॥
मैं बृहत्साम हूँ गानों में, गायत्री छन्द हूं छन्दों में ।
हूं अगहन बारह मासों में और हूं वसन्तऋतु ऋतुओं में ॥
छलियों में छल भी मैं ही हूं, और तेज हूं तेजनिधानों में ।
विजयी वीरों में विजय हूं मैं, मैं ही बल हूं बलवानों में ॥
वृष्णी लोगों में कृष्ण हूं मैं, पाण्डवों में अर्जुन भी मैं हूं ।
मुनियों में व्यासदेव मैं हूं, गुणियों में सद्गुण भी मैं हूं ॥
कवियों में शुक्राचार्य हूं मैं, हूं दण्ड प्रचण्ड शासकों में ।
हूं मौन भी मैं ही हे अर्जुन, इस जग के मौनसाधकों में ॥
मैं ज्ञान हूं पूर्ण ज्ञानियों का, हूं नीति परम नीतिज्ञों की ।
हूं बीज समस्त पदार्थों का, गति हूं मैं सारी गतियों की ॥

अर्जुन, मेरी विभूतियां हैं अत्यन्त अपार ।
बतलाया मैंने तुम्हें, यह थोड़ा विस्तार ॥
है जो कुछ इस विश्व में, सुख शोभा सम्पन्न ।
उसमें मेरी ज्योति ही, रहती है प्रच्छन्न ॥
अथवा इतना जानलो, छोड़ो सब विस्तार ।
मेरे बस एक अंश से, चमक रहा संसार ॥

❀ गाना ❀

अंश से चमक रहा संसार ।
केवल एक अंश से मेरे फैला यह विस्तार ॥ अंश० ॥
हैं जितनी वस्तुएँ जगत् में नयनानन्द अपार ।
व्याप रहा हूं अर्जुन, उनमें होकर मैं शृङ्गार ॥ अंश० ॥
जहां तलक जग के जीवों का दीख पड़े प्रस्तार ।
पिरा हुआ हूं मैं ही उनमें हो प्रतिभा का तार ॥ अंश० ॥

छाया हूँ मैं कमलदलों पर बनकर सुघर निखार ।
मैं उमङ्ग हूं जिन से उनपर भ्रमर करें गुञ्जार ॥ अंश० ॥
मैं वह गति हूँ जिससे चलती नदियों में जल धार ।
सिन्धु-तरङ्गों में करता हूं मैं ही नित्य विहार ॥ अंश० ॥
मैं ही भैरव राग मनोहर मैं गौरी केदार ।
वर्षा ऋतु का मैं ही अर्जुन ! मंजुल मृदुल मलार ॥ अंश० ॥
कलित कुसुम की कलियों में हूं, कल सुगन्ध भण्डार ।
मैं ही बहता हूं जो बहती शीतल मन्द बयार ॥ अंश० ॥
कण कण में यों देखा करता है जो मुझे निहार ।
जगज्जाल से वही भक्त मेरा पाता उद्धार ॥ अंश० ॥"

—०—

सुनकर यों श्रीकृष्ण के, वचन कुतूहल जन्य ।
बोला अर्जुन कृष्ण से—"नाथ, आपको धन्य ॥
किया अनुग्रह आपने, कहकर यह वक्तव्य ।
कुछ कुछ आया ध्यान में, रूप आपका भव्य ॥
है मेरा अनुमान यह, सब विभूति के साथ ।
बड़ा अलौकिक होयगा, रूप आपका नाथ !
इच्छा है मेरी बहुत, साधन यदि बन जाय ।
अतुलित अद्भुत रूप वह, दीजे कृष्ण, दिखाय ।"
अर्जुन के विनय-वचन सुनकर, भगवान् चित्त में मुसकाये ।
बोले—"अर्जुन, इन आँखों से वह रूप मेरा नहिं दिखपाये ॥
इसलिए तुम्हारी दिव्यदृष्टि, कुछ क्षण के लिए बनाता हूं ।
और फिर वह विश्व-विराट्रूप, प्रत्यक्ष तुम्हें दिखलाता हूं"॥
इतना कहकर कृष्ण ने, योग काम में लाय ।
अर्जुन के सम्मुख दिया, निज स्वरूप प्रकटाय ॥
उस अतुलरूप की झांकी का, लेखनी न वर्णन कर सकती ।
प्रतिभा उस अद्भुत दर्शन का, नहिं चित्र खींचकर धर सकती ॥

अगणित मुख अगणित नयनोंका, अगणित असंख्यपद करवाला
था रूप वह धारण किये हुए, अद्भुत वस्त्राभूषण माला ॥
अगणित सूर्यों की प्रभा-तुल्य, था उस स्वरूप का उजियाला ।
और उस स्वरूप में समाविष्ट, यह जग था जड़ चेतन वाला ॥
वह विस्मयवर्द्धक रूप देख, अर्जुन विस्मय में ग्रसित हुआ ।
दोनों कर जोर लगा करने, यों विनय चित्त में चकित हुआ ॥

गाना

अद्भुत अतुलित अनुपम अति विस्मयकारी ।
यह रूप आपका प्रभु, विराट् अति भारी ॥
हैं इस विराट् में देव सभी दिखलाते ।
ब्रह्मा भी कमलासन पर शोभा पाते ॥
नाना प्रकार के जीव दृष्टि में आते ।
जो बहु विधि कर्मों को हैं करते जाते ॥
मैं इस स्वरूप को बार–बार बलिहारी ।
यह रूप० ॥ १ ॥
इस विकट रूप में अगणित मुख और कर हैं ।
उन सभी करों में लिए आप बहु शर हैं ॥
बैठे इस में बहु किन्नर विद्याधर हैं ।
देखे जाते कितने ही अचर सचर हैं ॥
कुछ ओर छोर दीखे इसका न मुरारी !
यह रूप० ॥ २ ॥
प्रत्येक आप का शीश किरीटोंवाला ।
जिसने रविशशि का गर्व खर्व करडाला ॥
ग्रीवा में आपके झूल रही वनमाला ।
और सभी मुखों में धधक रही है ज्वाला ॥
छवि शंख चक्र और गदा पद्म की न्यारी ।
यह रूप० ॥ ३ ॥
हैं ऋषि–महर्षि और पितर जो कि कहलाये ।
इस रूप आपके में हैं सभी समाये ॥

इस उग्र रूप को देख देख भय पाये ।
कर रहे तुम्हारी विनय सभी शिरनाये ॥
सब ओर व्याप्त हो रहे आप अवहारा !
यह रूप० ॥ ४ ॥

जो भीष्म द्रोण आदिक कौरवभट भारे ।
जा रहे आपके मुख में हैं वे सारे ॥
आ आ के आपको दाढ़ों में बेचारे ।
पिस रहे विवश हो सभी जा रहे मारे ॥
यह सबका सब व्यापार घोर भयकारी ।
यह रूप० ॥ ५ ॥

कहिये मुझसे हैं कौन आप नँदनन्दन !
है कहाँ आपका आदि अन्त खलगञ्जन !
मति मेरी होती चकित राधिकारञ्जन !
यह चरित आपका है क्या, दुष्ट–निकन्दन ?
मैं करता तुम्हें प्रणाम सुदर्शन–धारी !
यह रूप० ॥ ६ ॥

—o—

अर्जुन के इस प्रश्न पर, गूँजी गिरा अनूप ।
उत्तर यों देने लगा, वही कृष्ण का रूप ॥
"हे अर्जुन, मैं अति उग्ररूप, विकराल काल कहलाया हूं ।
इस जगमें जगके जीवों का, क्षय करने को मैं आया हूं ॥
यह जितनी कौरव-सेना है, इस सबको ही खालूँगा मैं ।
यदि तुम न किसी को मारोगे, तो स्वयं मार डालूँगा मैं ॥
इसलिए उठो संग्राम करो, क्यों हो तुम मन में डरे हुए ?
तुम जिन्हें मारते डरते हो, वे हैं पहले ही मरे हुए ॥
उठ बैठो अब सन्देह त्याग, धनुवाण चलाओ जय पाओ ।
कौरव निश्चय मर जायेंगे, तुम केवल कारण बन जाओ"॥
अर्जुन ने श्रीकृष्ण को, किए अनेक प्रणाम ।
पुनि श्रद्धा और प्रीति से, बोला यों बलधाम ॥

"मैंने जाना और पहचाना, अब भली भांति से स्वामि! तुम्हें ।
तुम परब्रह्म परमेश्वर हो, हे विश्वम्भर ! प्रणमामि तुम्हें ॥
हे आदिपुरुष, अबतक मैंने, नहिं रूप तुम्हारा जाना था ।
इसलिए मित्र और ब्रजवासी, करके ही तुमको माना था ॥
हे जगन्नाथ, हे जगनिवास, क्षमिए, उन सब अपराधों को ।
और मोर मुकुट की झांकी में, फिर दर्शन दीजे आंखों को" ॥

तब योगेश्वर कृष्ण ने, रूप विराट् छिपाय ।
पहले का सा रूप सब, अपना लिया बनाय ॥

बोले—"अर्जुन, यह रूप मेरा, जो तुम्हें आज दिखलाया है ।
वह रूप मेरा जप तप से भी, कोई न देखने पाया है ॥
इन्द्रादिक देववृन्द उसके, दर्शन को नित ललचाते हैं ।
लेकिन वह विश्व-विराट् रूप, बिल्कुल न देखने पाते हैं ॥
पर जो मेरे ही हो रहते, मुझमें ही ध्यान लगाते हैं ।
बस, वही देख पाते उसको, जो मुझ ही में रम जाते हैं ॥
सारांश यही है इस सबका, सब कर्मों को करता जाये ।
पर करे हाथ पैरों से ही, मन कभी न उनमें उलझाये ॥
उन कर्मों का फल पाने की, इच्छा कुछ मन में करे नहीं ।
यह इच्छा तब मिट सकती है, जब ज्ञानी हो नर डरे नहीं ॥
ज्ञानी बनने का मार्ग यही, बस मेरा निशिदिन मनन करे ।
सर्वस्व भेंट करके मुझको, मेरा बन मेरा भजन करे ॥

होता मेरी भक्ति से, सुलभ ज्ञान—भण्डार ।
ज्ञानी होकर ही मनुज, पाता है उद्धार ॥

❀ समाप्त ❀

—:०:—

पं० राधेश्यामजी कविरत्न द्वारा लिखित नाटक

वीर अभिमन्यु	१॥)
महर्षि-वाल्मीकि	१॥)
सती पार्वती	१॥)
ईश्वर-भक्ति	१॥)
परम-भक्त प्रह्लाद	१॥)
परिवर्तन	१॥)
श्रीकृष्ण-अवतार	१॥)
रुक्मिणी-मङ्गल	१=)
द्रौपदी-स्वयम्वर	१॥)
श्रवणकुमार	१=)
ऊषा-अनिरुद्ध	१=)
मशरिक़ी हूर	१॥)
भारत-माता	।=)
कृष्ण-सुदामा	।=)
शान्ति के दूत भगवान् श्रीकृष्ण	।=)
सेवक के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण	।=)
घण्टा-पन्थ	।=)

नोट—नाटकों में वीर अभिमन्यु, श्रवणकुमार, और मशरिक़ी हूर, उर्दू में भी छपकर तैयार हैं। दाम वही जो हिन्दी में हैं।

न्यू अल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी आफ़ बम्बई द्वारा खेले गये

असली व मुकम्मिल नाटक

भूलभुलैयाँ	१)	दिलफ़रोश	१)
चलता पुर्जा	१)	शरीफ़ बदमाश	१)
ख़्वाबे हस्ती	१)	अछूता दामन	१)
ख़ूबसूरत बला	१)	हिन्दू विधवा	१=)

भारत व्याकुल थियेट्रिकल कम्पनी लिमीटेड आफ़ मेरठ द्वारा खेले गये

असली व मुकम्मिल नाटक

तेगेसितम	१=)	सम्राट् चन्द्रगुप्त	१=)

अन्य नाटक

महाराजा भर्तृहरि १=) पृथ्वीराज १॥)

भजन गाने व ग़ज़लें

श्रीराधेश्याम-गीताञ्जलि	१॥)
राधेश्याम विलास	१=)
राधेश्याम-कीर्त्तन	।॥)
राधेश्याम भजनमाला	१=)
प्राचीन भजनमाला	।=)
मोहन-कवितावली	।॥)
मुसाफ़िर की पाकेट बुक	।॥)
प्रेम-रत्नावली	≡)
निजानन्द प्रदीपिका	≡)
गृहिणी गीताञ्जलि	।=)
आनन्द-लहरी	—)॥
मीरा भजनमाला	।॥)
बोध-प्रकाशी	।=)
पद्य-पुष्पांजलि	—)॥
आरती संग्रह	—)॥
ग़ज़लों का गुलदस्ता	≡)
ग़ज़ल-सागर	।॥)
पद-पुञ्ज	—)॥
मोहन भजनमाला	।=)
मोहन गीतावली	।)॥
मोहन संगीत शिक्षा	।=)
सीताराम-कीर्तन	।॥)

भ्रमर-गीत-माला

मीठी गुञ्जार	≡)	मधुर मुरली	≡)
रसीली तान	≡)	कुसुम-कुंज	≡)
बसंतवाटिका	≡)	पद्म-पराग	≡)

अन्य पुस्तकें

भक्त स्त्रियाँ	।॥)	अमरकोष	।=)
सतलड़ी	।॥)	पत्नों का प्याला	।)॥
अजायब घर	।॥)	धनुर्विद्या	।॥)
प्रेत-लोक	१॥)	नौलखाहार	१॥)
ज्योतिष-प्रकाश	॥)	दृष्टांत महासागर	१॥)
वियोग-कथा	।=)	मोहन माला	≡)
हनुमानचालीसा	—)॥	सुन्दरकाण्ड	।=)

पता—श्रीराधेश्याम-पुस्तकालय, बरेली।

नक़ली किताबों से बचिये

हमारी रामायण और हमारे नाटकों का काफ़ी प्रचार देखकर लोगों ने उसी रंग और रूप की नक़ली किताबें छाप छापकर प्रकाशित करदी हैं। नक़्क़ालों की कई बरस की कोशिश का नतीजा यह है कि बाज़ार में नक़ली किताबों की भरमार है। यह नक़ली किताब)॥ में बुक्सेलर को दी जाती है, जिसे बुक्सेलर -) या =) या ≡) में बेचकर फ़ायदा उठाता है और इस प्रकार ग्राहक को धोखा दिया जाता है। ग्राहक जब ऐसी किताब को घर ले जाता है तो पछताता है। ग्राहक का ऐसी धोखेबाज़ी से बचाने के लिये अब हम अपनी हर एक किताब के ऊपर अपनी तस्वीर देने लगे हैं, जैसी कि इस किताब पर आप देख रहे हैं। अब आइन्दा से आप धोखा न खाइयेगा—

ध्यान रहे—

जिन किताबों पर—"राधेश्याम" या—"राधेश्याम वाशिष्ठ" या "तर्ज़—राधेश्याम" छपा रहता है, वह हमारे यहाँ की नहीं हैं। हमारे यहाँ की किताबों पर हमारे यह दस्तख़त भी रहते हैं। इन्हें पहचान लीजिये—

राधेश्याम

भवदीय—

राधेश्याम कथावाचक

मालिक—श्रीराधेश्याम पुस्तकालय व प्रेस, बरेली

पं० राधेश्यामजी कविरत्न लिखित नवीन कृति

कृष्णायन

जन्माष्टमी ।=) नन्द-महोत्सव ।=)
मुरलीवाला कन्हैया ।=) गिरिवरधारी ।=)
रास-रहस्य ।=) कंस-वध ।=)
नन्द-नन्दन-वसुदेव-नन्दन ।=)

सम्पूर्ण सातों भाग एक सुन्दर जिल्द में छः आने अधिक देने पर अर्थात् तीन रुपए में मिलेंगे। डाक महसूल ।≡) अलग

रुक्मिणी-मंगल

(राधेश्याम रामायण की तर्ज़ में)

रुक्मिणी-जन्म ।=)
रुक्मिणी का कृष्ण प्रेम ।=)
रुक्मिणी की सगाई ।=)
रुक्मिणी का पत्र-लेखन ।=)
रुक्मिणी का गिरिजा-पूजन ।=)
रुक्मिणी का भ्रातृस्नेह ।=
रुक्मिणी विवाह ।=

सम्पूर्ण सातों भाग एक सुन्दर जिल्द में छः आने अधिक देने पर अर्थात् तीन रुपए में मिलेंगे। डाक महसूल ।≡) अलग

श्रीमद्भगवद्गीता

(राधेश्याम रामायण की तर्ज़ में)

अर्जुनमोह ।)॥ विराट्रूप-दर्शन ।)॥
आत्मा की अमरता ।)॥ जीव-ब्रह्म-विवेक ।)॥
कर्म-योग ।)॥ अर्जुन का समान ।)॥

नोट—सम्पूर्ण ६ भाग एक सुन्दर जिल्द में ।–) अधिक देने पर, अर्थात् २) में, मिलेंगे तथा जिल्ददार गुटका १॥) रु० में मिलेगा। डाक महसूल गुटका ।–) अलग अलग भाग पर ।=)।

दुर्गा-चरित्र

(राधेश्याम रामायण की तर्ज़ में

महिषासुर-वध ।=)
शुम्भ का उन्माद ।=)
चामुण्डा का पराक्रम ।=
रक्त-बीज की लड़ाई ।=)
शुम्भ और निशुम्भ का वध ।=)

नोट सम्पूर्ण ५ भाग एक सुन्दर जिल्द में छः आने अधिक देने पर अर्थात २।) में मिलेंगे, तथा जिल्ददार गुटका १॥) में मिलेगा। डाक महसूल गुटका ।–) अलग अलग भाग पर ।=)।

महाभारत

(राधेश्याम रामायण की तर्ज़ में

भीष्म-प्रतिज्ञा ।=)
भीष्म-पराक्रम ।=)
पाण्डव-जन्म ।=)
पाण्डवों का बाल्य-काल ।=)
पाण्डवों की शस्त्र-परीक्षा ।=)
लाक्षागृह ।=)
बक-संहार ।=)
द्रौपदी-विवाह ।=)
सुभद्रा-हरण ।=
राजसूय-यज्ञ ।=)
द्रौपदी-वस्त्र-हरण ।=)
किरातार्जुन-युद्ध ।=)
यक्ष-सम्वाद ।=)
कीचक-वध ।=)
अभिमन्यु विवाह ।=)

अन्य कथायें

(राधेश्याम रामायण की तर्ज़ में)

नरसी की हुंडी ।)॥
श्रीसत्यनारायण की कथा ।=)
प्रह्लाद-चरित्र ।=)
ध्रुव-चरित्र ।=)
सुदामा-चरित्र ।=)
मोरध्वज-चरित्र ।=)
भर्तृहरि-चरित्र ।=)
महाराणा प्रतापसिंह ।=)
सत्यवादी हरिश्चन्द्र ।=)
सावित्री-सत्यवान् ।=)
मीराबाई ।=)
भक्त-अम्बरीष ।=)
अभिमन्यु की वीरता ।=)
गुरु गोविन्दसिंह ।=)
गुरु नानक ।=)
बुद्ध-चरित्र ।=)
द्रौपदी-लीला ।)॥
महाराजा दिलीप ।)॥
सती स्वयम्वर ।=)
सती मोह ।=)
महर्षि चरित्र (३) भाग १॥)



* श्रीमद्भगवद्गीता *

संख्या—५

जीव-ब्रह्म-विवेक

लेखक—
प० रामनारायण पाठक

प्रकाशक—

नेपाल गवर्नमेंट से "कथावाचस्पति" की पदवी प्राप्त—
कीर्तन-कला-निधि, काव्य-कला-भूषण,
श्रीहरि-कथा-विशारद, कविरत्न—

प० राधेश्याम कथावाचक,

अध्यक्ष—



सातवीं बार २०००] सन् १९४६ ई० [मूल्य साढ़े चार आने

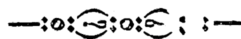
प्रिंटर—पं० रामनारायण पाठक, श्रीराधेश्याम-प्रेस, बरेली।

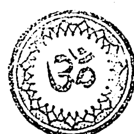


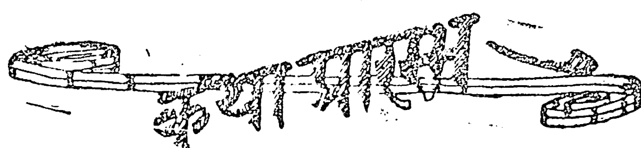


प्रार्थना

ऐसे हैं नँद-नन्दन, सब कष्ट हटा देंगे ।
हे जन! वे तेरे मन की, सब साध मिटा देंगे ॥
उत्साह लेके बढ़ चल, दर्शन खुले हुए हैं ।
माला नहीं है तो क्या, तन मन ही चढ़ा देंगे ॥
केवल गया अयोध्या, काशी नहीं ठिकाने ।
वह सब जगह है यह हम, वेदों से दिखा देंगे ॥
क्या बात है अनोखो, वह याद तब करेंगे ।
जब याद में हम उनकी, अपने को भुला देंगे ॥
है मार्ग यों अँधेरा, आपा न अपना सूझे ।
तू चाहे तो दीपक की, हरि ज्योति जगा देंगे ॥
व्याकुल है किसलिये यों, क्यों धैर्य खो रहा है ।
बिगड़ी हुई तेरी सब, 'निर्गुण' वह बना देंगे ॥







विश्व-रूप भगवान् का, लखि लेने के बाद ।
अर्जुन ने कुछ सोचकर, पूछा यों साह्लाद ॥
"भगवन्, मैंने यह समझ लिया, मन ही करता सब गड़बड़ है ।
वह फल इच्छा जो करता है, सो यह ही दुःखों की जड़ है ॥
इस मन के वश में लाने को, आवश्यक है वैराग करे ।
वैराग प्राप्त यह तब होगा, जब नर तुमसे अनुराग करे ॥
सो अब यह बतलाओ केशव, किस विध तुम में अनुरक्ति करे ?
किस रूप तुम्हारे का प्राणी, पूजन-वन्दन और भक्ति करे ?"
अर्जुन के इस प्रश्न को, सुनकर आनँदकन्द ।
समझाने सादर लगे, यों उसको व्रजचन्द ॥
"अर्जुन, यह बात याद रक्खो, हैं दो प्रकार के रूप मेरे ।
साकार और एक निराकार, दोनों ही रूप अनूप मेरे ॥
असली स्वरूप है निराकार, जिसका कि ओर और छोर नहीं ।
जिसमें गुण और विकार नहीं, गोरे काले की कोर नहीं ॥
ज्ञानी बस ज्ञान-नेत्रों से, यह रूप मेरा लखि लेता है ।
पर यों साधारणतः सबको, यह नहीं दिखाई देता है ॥
हाँ, दूसरा जो साकार रूप, माया का है, वह ऐसा है ।
मुख, नेत्र, नाक, पग, कर वाला, होता लोगों का जैसा है ॥

वह रूप मेरा अति सुन्दर है, दर्शन से मन सुख पाता है ।
प्राणी का चित कैसा भी हो, छवि से उसकी खिंच जाता है॥
इसलिये यही साकार रूप, है उत्तम काम बनाने को ।
चित शीघ्र सफल होजाता है, इस रूप में ध्यान जमाने को ॥
जो भक्ति मेरी आरम्भ करे, वह इसी रूप का ध्यान धरे ।
है निराकार का ध्यान कठिन, इसलिए कठिनता में न पड़े ॥

मन में अपने धार ले, रूप मेरा साकार ।
मूर्ति बनाले या मेरी, सुन्दर शोभागार ॥

[व्याख्यान—भगवान् अपनी मूर्ति बनाने का उपदेश यहाँ करते हैं। जिस व्यक्ति का मन अभी सधा नहीं है और जिसे कुछ ज्ञान भी नहीं है, वह भगवान् के निराकार निर्गुण और सर्वव्यापक स्वरूप को ध्यान में लाकर समाधि नहीं लगा सकता। आंखों को दीखनेवाले साकार रूप पर अवश्य उसका ध्यान जम सकता है। पर यह ध्यान रहे कि साकार रूप भगवान् का असली रूप नहीं, बल्कि माया का रूप है, और यह माया का रूप केवल इसलिये है कि उसके सहारे से ध्यान लग सके और मन एकाग्र हो सके। इसी साकार रूप की मूर्ति बना ली जाती है। शास्त्रों में यह मूर्ति आठ प्रकार की कही है, अर्थात्:—

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ।
मनोमयी मृण्मयी प्रतिमाश्चाष्टविधाः स्मृताः ॥

तात्पर्य यह है कि भगवान् की प्रतिमा यानी मूर्ति पत्थर की, लकड़ी की, लोहे की, रोली या केशर से खिंची हुई, तस्वीर कढ़ी हुई, बालू की, मन के भीतर की और मिट्टी की—यों आठ प्रकार की हो सकती है। यह प्रतिमाएँ सब आरम्भ के अभ्यास के लिए हैं। अभ्यास करते करते जब मन शान्त होजाता है और ज्ञान की प्राप्ति होजाती है तो सर्वत्र व्यापने वाले भगवान् के निराकार-स्वरूप की झाँकी आप से आप होने लगती है। उस समय फिर प्रतिमा की आवश्यकता नहीं रहती]

मूर्ति बनाये जो मेरी तो करके उपचार ।
करे विविध विध प्रेम से, उसका नित शृङ्गार ॥

उसको सुन्दर मन-हरण बना, ऊँचे आसन पर पधरावे ।
समझे मेरा प्रतिबिम्ब उसे, और चित अपना उस पर लावे ॥

जो कर्म करे निज जीवन में, वह सब के सब अर्पन करदे ।
ममता तज करके भेंट उसे, अपना तन मन और धन करदे ॥
मुझको उद्देश बना अपना, पूजन उपचार करे उसका ।
वह मूर्ति नहीं है मैं ही हूँ, इससे सत्कार करे उसका ॥
मैं सर्वव्यापक होने से, उस मूर्ति-मध्य आ जाता हूं ।
वह पूजा-सेवा भक्तों की, सब लेकर के सुख पाता हूं ॥
जितनी सेवा के साथ भक्त, मेरा यों आदर करता है ।
उतना ही मेरा प्रिय होकर, मेरे मन में घर करता है ॥
ज्यों ज्यों यह पूजा चलती है, त्यों त्यों दुख हटते जाते हैं ।
धीरे धीरे माया वाले-बादल सब छटते जाते हैं ॥
चञ्चल मन थिर हो जाता है, बुद्धी भी सम हो जाती है ।
सुख-दुख में हर्ष-विषादों में, मर्याद न जाने पाती है ॥
इस श्रेष्ठ अवस्था को पाकर, कोई नीचे नहिं गिरता है ।
मुझको भजकर प्राणी का चित, फिर कभी न मुझसे फिरता है ॥
जो मुझे प्यार करने लगता, होता वह मेरा भी प्यारा ।
मद-लोभ-काम-क्रोधादिक से, होजाता उसका छुटकारा ॥
वह ज्ञान उसे मिल जाता है, जो ज्ञान मोक्ष का साधन है ।
असली स्वरूप का भी मेरे, होता उसको फिर दर्शन है ॥
यह असली रूप देख मेरा, संकट समाप्त हो जाता है ।
मैं उसे प्राप्त हो जाता हूं, वह मुझे प्राप्त हो जाता है ॥

अर्जुन, मेरी भक्ति में, है यह इतनी शक्ति ।
इसीलिये आरम्भ में, करे बस मेरी भक्ति ॥
आवश्यक इस भक्ति में अधिक न कुछ सामान ।
बस एक मन का भाव ही, होता परम प्रधान ॥

❋ गाना ❋

भाव का भूखा हूँ मैं, और भाव ही बस सार है ।
भाव से मुझको भजे तो भव से बेड़ा पार है ॥
अन्न धन और वस्त्र भूषण, कुछ न मुझको चाहिए ।
आप होजाए मेरा, बस यह मेरा सत्कार है ॥
भाव-बिन सब कुछ भी दे डाले तो मैं लेता नहीं ।
भाव से एक फूल भी दे, तो मुझे स्वीकार है ॥
भाव से रीती पुकारें, मैं कभी सुनता नहीं ।
भाव-पूरित टेर ही, करती मुझे लाचार है ॥
जो मुझी में भाव रखकर, मेरी लेता है शरण ।
उसके और मेरे हृदय का, एक रहता तार है ॥
भाव जिस जन पर नहीं, उसकी मुझे चिन्ता नहीं ।
भाववाले भक्त का भरपूर मुझ पर भार है ॥
बाँध लेते हैं मुझे भावुक मेरे जञ्जीर में ।
इसलिए इस भूमि पर होता मेरा अवतार है ॥"

—०—

भाव और यों भक्ति की महिमा सुन सुख पाय ।
अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पुनि पूछा सिर नाय ॥

"गोविन्द, कृपा करके मुझको, अबतक समझाया जो तुमने ।
सुन्दर है भक्ति भाव का यह व्याख्यान सुनाया जो तुमने ॥
अब मुझे पूछना है तुमसे, यह देह मनुष्यों की क्या है ?
इस देह बीच जो आत्मा है, वह कौन ? कहाँ का ? कैसा है ?"
यह सुनकर बोले वासुदेव,—"अर्जुन, जो देह तुम्हारी है ।
सो हाड़ मांस और लोहू की, तैयार हुई तैयारी है ॥
यह देह क्षेत्र कहलाती है, पण्डित यह बात समझते हैं ।
आत्मा जो इसमें रहता है, क्षेत्रज्ञ उसे वे कहते हैं ॥

क्षेत्रज्ञ क्षेत्र इन दोनों का, मैं भेद तुम्हें हूँ समझाता ।
ज्ञानी वह ही होता अर्जुन, जो इनका भेद समझ जाता ॥
पृथ्वी, जल, पावक, पवन, गगन, मन, अहंकार और बुद्धि सहित ।
इच्छा, चेतनता, राग, द्वेष, सुख, दुख जो नित्य करें विचलित ॥
इन्द्रियां पांच मुख नयन आदि, फिर उनके पांच विषय न्यारे ।
और ज्ञान इन्द्रियां सूक्ष्म पांच, धृति प्रकृति हुए इकतिस सारे ॥
यह इकत्तीस मिलकर पदार्थ, बनते हैं क्षेत्र मनुष्यों का ।
इस क्षेत्र में जो क्षेत्रज्ञ रहे, वह ईश्वर है सब जीवों का ॥

ईश्वर ही क्षेत्रज्ञ है, क्षेत्रों बीच समान ।
मैं और ईश्वर एक हूँ, भेद नहीं कुछ मान ॥

यह ईश्वर यद्यपि एकी है, पर सब क्षेत्रों में समा रहा ।
इसलिए एक होने पर भी, सब को अनेक सा दिखा रहा ॥
इस ईश्वर के सब ओर शीस, सब ओर चरण हैं और कर हैं ।
सब ओर कान मुख हैं उसके, सब ओर नेत्र अति सुन्दर हैं ॥
पर उसके आंख कान आदिक, होते हैं सब कहने भर के ।
वह कर्म इन्द्रियों के करता, यद्यपि इन्द्रियां न ईश्वर के ॥
सबसे रहकर वह अलग विलग, पालन जीवों का करता है ।
निर्गुण है लेकिन फिर भी वह, उपभोग गुणों का करता है ॥
वह दूर भी है और पास भी है, भीतर भी है बाहर भी है ।
ऐसी कुछ लीला है उसकी, वह गुप्त भी है ज़ाहिर भी है ॥

सकल विश्व की सृष्टि कर, सबकी करे संवार ।
अन्त आप ही से करे, उन सबका संहार ॥
उसके तेज प्रकाश में, सब प्रकाश हैं म्लान ।
ज्ञान है वह और ज्ञान से, है उसकी पहचान ॥

अर्जुन, अब सुनो ध्यान देकर, एक मुख्य बात समझाता हूँ ।
जो वस्तु ज्ञान कहलाती है, सो क्या है यह बतलाता हूँ ॥
पहचान ज्ञान की यही कि बस, जो नर ज्ञानी हो जाता है ।
मन उसका उसे इन्द्रियों के—भोगों में फिर न फँसाता है ॥
सन्तान—भार्यादिक में चित्त उसका नहिं अटका रहता है ।
सुख दुख या हानि लाभ का कुछ, उसको नहिं खटका रहता है ॥
नम्रता, सरलता, निश्छलता, दृढ़ता भी उसमें रहती है ।
यों होती चित्त-वृत्ति उसकी, शिर पर आये सो सहती है ॥
अभिमान नहीं होता उसमें, पाखण्ड उसे न सुहाता है ।
सन्तों की सेवा और संगति पाने को वह ललचाता है ॥
बाल्यावस्था वृद्धावस्था और जन्म—मृत्यु अति दुखकारी ।
वह इन्हें जानता है यह हैं—प्राणी के संग दोष भारी ॥
नित क्षमाशील और दयाशील और पुण्यशील होकर रहना ।
बस, होता उसका चलन यही, प्रिय बनना, करना, और कहना ॥

लक्षण है बस ज्ञान का ऐसा यह व्यवहार ।
बिना ज्ञान के जीव का होय न यों आचार ॥

❀ गाना ❀

ज्ञान-बिन होय न यह आचार ।
एक ज्ञान—बल से ही सध सकता है यह व्यवहार ॥ ज्ञान० ॥
ज्ञान सिखाता है प्राणी को, करना उचित विचार ।
जिससे जग में दीखे उसको परमेश्वर ही सार ॥ ज्ञान० ॥
हर्ष-शोक-सुख-दुख का मन में—रहता जो कि बुखार ।
ज्ञान जड़ी के द्वारा सो सब मिट जाता आज़ार ॥ ज्ञान० ॥
मेरो बेटो मेरा बेटा, मेरा यह घरद्वार ।
ज्ञान छुड़ा देता है क्षण में—यह बक-बक बेकार ॥ ज्ञान० ॥

—०—

सुध मिट जाती आपे का, बढ़ता आनन्द अपार ।
ज्ञान बजाता है जब लेकर अपना सुखद सितार ॥ ज्ञान० ॥
जादू के समतुल्य ज्ञान का; यों होता व्यापार ।
तन रहता इस पार जगत् के, मन जाता उस पार ॥ ज्ञान ॥

ज्ञान, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ की, व्याख्या भले प्रकार ।
यहां तलक सुनकर हुआ, अर्जुन मुदित अपार ॥
धीरे-धीरे फिर कहा, उसने यों सविवेक ।
"कृष्ण, पूछना है मुझे, प्रश्न और दो एक ॥
यह बतलाओ अब भेद मुझे, यह जगत् जो कि दिखलाता है ।
सो कैसे और कब बनता है, और कैसे कब मिट जाता है ?
जल थल जड़ जंगम का जो यह विस्तार हो रहा सारा है ।
सो आँखों के आगे किसका-पसराया हुआ पसारा है ?"
अर्जुन का यों प्रश्न यह, सुना ध्यान के साथ ।
सुन कर यों कहने लगे, उत्तर में यदुनाथ ॥
"अर्जुन, जो मेरी माया है, सो योनि मेरी कहलाती है ।
और यही योनि चर अचर सभी, जगती की सृष्टि रचाती है ॥
इस माया-रूप योनि में मैं-करता हूँ वीर्यदान ज्योंही ।
जल थल और जड़ जंगमवाला-उत्पन्न जगत् होता त्योंही ॥
इस जग के देहधारियों की-जीवात्मा है जो काया में ।
वह जीवात्मा है अंश मेरा, पर फँसा हुआ है माया में ॥
सत, रज, और तम यह अलग अलग हैं प्रबल तीन गुण माया के ।
कहलाते यह तीनों विकार, अर्जुन, प्राणी की काया के ॥
काया के इन्हीं विकारों में, बँधकर जीवात्मा रहता है ।
यों अंश मेरा होने पर भी, वह जन्म-मरण दुख सहता है ॥

जब सत् का अंश अधिक होता, तब जीव शांति सुख पाते हैं ।
लेकिन रज अधिक रहे तो फिर, तृष्णा में वे फँस जाते हैं ॥
यदि अधिक तमोगुण होगा तो, बस ज्ञान नष्ट होजायेगा ।
आलस्य, मोह, और दुर्मति से, नर मार्ग-भ्रष्ट होजायेगा ॥

माया के यह तीन गुण, हैं अति प्रबल विकार ।
इनके वश में जीव नित, रहता है लाचार ॥

जब सत् का अंश अधिक हो-तब, यदि जीव देह त्यागे कोई ।
तब सुख सम्पतिमय स्वर्गलोक, निश्चय पा जाता है सोई ॥
यदि रज का अंश अधिक है तो, जीवात्मा स्वर्ग न जायेगा ।
छोड़ेगा एक शरीर इधर, और उधर दूसरा पायेगा ॥
पर रहे तमोगुण अधिक अगर, तो फिर मिलता है दुख भारी ।
पशु पक्षी आदिक की मिलती, प्राणी को योनि क्लेशकारी ॥
सत् गुण का फल है सुखदाता, रजगुण का फल दुखदाता है ।
लेकिन तम गुण के फल से तो, नर पशु बनकर रहजाता है ॥
माया के गुण यह सत् रज तम, बहुविध कौतुक दिखलाते हैं ।
जीवों को लाकर बन्धन में, नट-मर्कट-तुल्य नचाते हैं ॥
जो इन्हीं गुणों को सब जगका, कर्त्ता कारण जाना करता ।
सुख दुख जीवन मरणादिक का, जो हेतु इन्हें माना करता ॥
है धन्य वही प्राणी अर्जुन, बन्धन से वह छुट जाता है ।
भवसागर से झट पार उतर, मेरे समीप में आता है ॥
सारांश यही है कहने का, यह सृष्टि जो कि दिखलाती है ।
सो उक्त गुणों से माया के होती है और मिट जाती है ॥
कल्याण उसी का होता है, जो इन त्रिगुणों से हटा रहे ।
हो अलग विकारों से उनके, निर्द्वन्द्व क्षेत्र में डटा रहे ॥"

अर्जुन यों कहने लगा-'कहिये कृष्ण, सुजान ।
गुण से जो नर मुक्त है, उसकी क्या पहचान ॥"

सुन कर यह वचन कृष्ण बोले,—"अर्जुन, पहचान बताता हूं ।
होता गुण से जो मुक्त जीव, उसका लक्षण समझाता हूं ॥
वह जीव गुणों की लीला में,—मन को अपने न फँसाता है ।
इसलिए जगत् के सुख दुख में, वह सुख दुख नहीं मनाता है ॥
धन धान्य धाम धरणी पर वह, होता बिल्कुल अनुरक्त नहीं ।
नारी या पुत्र पौत्रों में, निज मन रखता आसक्त नहीं ॥
होजाय हानि यदि उसकी तो, वह कुछ भी शोक नहीं करता ।
और लाभ अगर कुछ हो तब भी, मन में आनन्द नहीं भरता ।
बस उदासीन रहकर जग की, सब चहल पहल देखा करता ।
और चहल पहल को माया की मिथ्या लीला लेखा करता ॥
मिट्टी, पत्थर, सोने का वह, एकी सा मूल्य लगाता है ।
बैरी और मित्रों से अपना, रखता एकी सा नाता है ॥
बदनामी नामवरी की भी, करता है कुछ पर्वाह नहीं ।
और कभी किसी के प्रति मन में, रखता नफ़रत और चाह नहीं ॥
आदर में और निरादर में, वह गर्व क्रोध नहि करता है ।
जग की बलवती शक्तियों की दहशत से कभी न डरता है ॥

करता वह संसार के, यद्यपि कर्म सुजान ।
पर बिल्कुल फँसता नहीं, उनमें उसका ध्यान ॥
रहता है इस भाँति जो, मुझ में चित्त लगाय ।
अर्जुन, वह नर विश्व में, त्रिगुणातीत कहाय ॥

गाना

गुणों से बिलकुल जो बच जाय ।
वही जन त्रिगुणातीत कहाय ॥
सब प्रकार के कर्म करे जो फल इच्छा को त्याग ।
कभी किसी से करे न मन में द्वेष या कि अनुराग ॥
रहे निर्लिप्त सदा सुख पाय ।
वही जन० ॥
शत्रु-मित्र में भेद न देखे समझे उन्हें समान ।
निर्मल चित से चहे सारे जीवों का कल्यान ॥
सभी से मिले प्रेम से धाय ।
वही जन० ॥
यश-अपयश में होय न जिसको अहङ्कार या रोष ।
मन वाणी और कर्मों में जिसके न रहे कुछ दोष ॥
सदाचार निर्मल जो दिखलाय ।
वही जन० ॥
हानि-लाभ की चिन्ता से जो चञ्चल कभी न होय ।
सुख-दुख में मर्यादा अपनी दे न हाथ से खोय ॥
धैर्य जिसमें इतना होजाय ।
वही जन० ॥
माया के गुण सत, रज तम ,हैं जग है उनका खेल ।
इसीलिये जो करे न जग से अपने मन का मेल ॥
रहे जो जग में मोह मिटाय ।
वही जन० ॥
नश्वर जग में अविनश्वर है ईश्वर एक पुनीत ।
अजर-अमर उस परमेश्वर से करता जो जन प्रीत ॥
उसी के रँग में जो रँग जाय ।
वही जन० ॥

—o—

अब अर्जुन, आगे सुनो, कहता हूं समझाय ।
वर्णन इस संसार का, फिर समझो चितलाय ॥

कवियों की भाषा में समझो, संसार एक यह पीपल है ।
जिसकी जड़ तो ऊपर को है, नीचे शाखाओं का दल है ॥
पत्ते इस पीपल के वह हैं, जो वेद पवित्र कहाते हैं ।
इसकी शाखाओं के समूह, ऊपर नीचे को जाते हैं ॥
सत्, रज, तम यह माया के गुण, शाखें पौढ़ाया करते हैं ।
इन शाखाओं में विषयों के कल्ले नित आया करते हैं ॥
कर्मों की सूरत में उसकी, जड़ भी नीचे को आती है ।
और नीचे आकर इस जग में, सब तरफ फैलती जाती है ॥
यह वृक्ष बड़ा ही अद्भुत है, ज्यों का त्यों नजर नहीं आता ।
आधार नहीं मिलता इसका, और आदि अन्त नहिं दिखलाता ॥
यदि इसको काटा चाहे तो, वैराग्य कुल्हाड़ी से काटे ।
शाखों को और टहनियों को, अच्छी प्रकार चुन चुन छांटे ॥
जब काट छांट से निबट जाय, तब प्राणी मेरी खोज करे ।
यह वृक्ष मुझी से उगता है, लेकिन मैं उससे रहूँ परे ॥

मुझको पाता है वही, जो होता निष्काम ।
मिलता त्रिगुणातीत को, निर्मल मेरा धाम ॥

यह धाम मेरा वह है अर्जुन, जो स्वयं प्रकाशित है सारा ।
यह नहीं कि जैसे मर्त्यलोक, चमके है सूर्य्य चन्द्र द्वारा ॥
जो मेरे धाम में आजाते, वे मुझ ही से होजाते हैं ।
फिर कभी न माया ठगनी के, जादू उन पर चल पाते हैं ॥
है जीव अंश सच्चा मेरा, वह जब शरीर में आता है ।
तो पाँच ज्ञान इन्द्रियों सहित, मनको अपने सँग लाता है ॥

मन आँख कान, नासिका, जीभ और त्वचा बीच वह रह करके ।
इन्द्रिय विषयों का भोग करे, सुख दुख जीवन के सह करके ॥
फिर जब जाता है देह छोड़, तो नहीं अकेला जाता है ।
उन चीजों को सँग लेजाता, जिन चीजों को सँग लाता है ॥
यों जीवात्मा के सँग आतीं, और फिर उसके सँग जाती हैं ।
सो सूक्ष्म वस्तुएँ हैं सारी, और लिङ्ग देह कहलाती हैं ॥
इस लिंग- देह में फँसा जीव, नित चक्कर खाता रहता है ।
चौरासी लाख योनियों में, आता और जाता रहता है ॥

माया के गुण जीव को, योंही चक्कर देंय ।
जन्म-जन्म तक बाँधकर, निज वश में कर लेंय ॥

लेकिन जीवात्मा निर्मल है, और मेरा अंश सुहाता है ।
जैसा स्वतन्त्र मैं हूँ वैसा-वह भी स्वतन्त्र कहलाता है ॥
यह भेद समझते हैं वे ही, जो पुरुष विज्ञ और ज्ञानी हैं ।
लेकिन कुछ नहीं समझते वे, जो अज्ञानी अभिमानी हैं ॥
निर्मल मति वाले यत्न करें तो चट यह भेद समझ जाते ।
पर मूर्ख यत्न करने पर भी, रहते हैं नित चक्कर खाते ॥
जीवात्मा का सच्चा स्वरूप, जिसने समझा वह छूट गया ।
माया के त्रिगुण विकारों का फन्दा भी उसका टूट गया ॥
चन्द्रमा अग्नि और सूर्य्य बीच, जो उज्ज्वल तेज समाया है ।
अर्जुन, तुम यह निश्चय जानो, वह तेज मुझी से आया है ॥
मैं इसी तेज से पृथ्वी के, भीतर सँचारण करता हूं ।
और इस प्रकार से भूतल की सृष्टी को धारण करता हूं ॥
मैं चन्द्र-किरण का अमृत हो, ओषधियों को उपजाता हूं ।
जठरानल होकर जीवों के उदरों में अन्न पचाता हूं ॥

सब के हृदयों में रहूँ देता सब को ज्ञान ।
वेद और वेदान्त का, मैं ही हूँ विद्वान ॥

जो भी पदार्थ है नाशवान् वह 'क्षर' पदार्थ कहलाता है ।
और मूल में जो रहता क्षर के, वह 'अक्षर' माना जाता है ॥
'अक्षर' और 'क्षर' इन दोनों से, अर्जुन, मैं अलग सुहाता हूं ।
इसलिए तत्त्व यह समझो तुम, मैं पुरुषोत्तम कहलाता हूं ॥
यों मुझको पूरा पुरुषोत्तम, जो समझेगा, और पायेगा ।
वह माया-जनित विकारों से, छुटकर मुझ तक आजायेगा ॥

गाना

माया—जगत् को नचाती, जगत् को नचाती ।
परवश हो जाय प्राणी जगत् को नचाती ॥
सत् रज तम हैं गुण महा प्रबल, जो सीधी राह भुलाते हैं ।
ईश्वर का अंश जीव है सो यह बौरा उसे बनाते हैं ॥
बुद्धी,—मलिन कर देते, मलिन कर देते ।
इनसे बच जाय तो फिर सुगति हो जाती ॥
माया के वश नर कहते हैं घर तेरा है घर मेरा है ।
पर तेरा और न मेरा है बस चिड़िया रैन—बसेरा है ॥
ज्ञानी,-न धोखा खाते, न धोखा खाते ।
जग की कोई बात उनके न मन को भुलाती ॥
बेटे पोते भाई बान्धव सब जीते जीके नाते हैं ।
जब प्राण गले में आ अटकें तब काम न कोई आते हैं ॥
इनकी करे नहिं ममता, करे नहिं ममता ।
यह ममता नित्य आवागमन में फंसाती ॥
धन धान्य धाम धरणी अथवा सामान विविध सुख भोग भरे ।
सब ठाट पड़ा रह जाता है जब जीव जगत् से कूच करे ॥
हंसा,—अकेला जाता, अकेला जाता ।
सँग लेकर धर्म जिससे विपत्ति मिट जाती ॥

संसार असार सरासर है जो चीज यहां है नश्वर है।
इसकी तह में जो ईश्वर है, बस केवल वही अनश्वर है॥
उसकी शरण जो जाये, शरण जो जाये।
माया फिर भूलकर भो न उसको सताती॥

—:—

अच्छा, अब आगे सुनो, और बात है एक।
माया के गुण और भी, खेलें खेल अनेक॥

इन खेलों के कारण से ही, बहु भेद-विभेद दिखाते हैं।
गुण शील आदि सब जीवों के, एक से नहीं बन पाते हैं॥
दैवी आसुरी प्रकृतिवाले, होते प्राणी उत्पन्न सदा।
इन दो प्रकार के जीवों से, रहता यह जग सम्पन्न सदा॥
है जिसकी दैवी प्रकृति सुघर, वह होता निर्मल चितवाला।
रहता उसके उर अन्तर में, नित ज्ञान-ज्योति का उजियाला॥
वह कर्म जगत् के करता है और रखता चित्त विलग उनसे।
इन्द्रियां कर्म करतीं उसकी, पर रहता चित्त विलग उनसे॥
वह ज्ञान-यज्ञ और जप तप में, अपनी शुचि निष्ठा रखता है।
ईश्वर के पाद—पंकजों में, आदर और श्रद्धा रखता है॥
जीवों पर सदा दया करता, मृदु वाणी बोला करता है।
अच्छे कर्मों के करने में, अगुआ बनते नहिं डरता है॥
कर्मों का फल कुछ मिले मुझे यह उसको चाह नहीं होती।
होनी से जो दुख सुख मिलते, उनकी परवाह नहीं होती॥
शुद्धता, सरलता, धैर्य शान्ति—रहती उसके व्यापारों में।
मन उसका कभी नहीं फँसता, माया के त्रिगुण-विकारों में॥
तेजस्वी होने पर भी वह, हिंसा या क्रोध न करता है।
औरों को सुख पहुंचाने में, बहुधा अपना दुख भरता है॥

लज्जा, गुरुता, सत्य का होता वह आगार ।
निरभिमान निश्चल सदा, रखता हृदय उदार ॥
अब जो आसुरी प्रकृति के हैं, वे होते क्रोधी अभिमानी ।
निष्ठुर होकर बोला करते, खु खुरी बात वे अज्ञानी ॥
जिनकी दैवी प्रकृति ही सुख सहित मोक्ष पद पाते हैं ।
लेकिन आसुरी प्रकृति वाले, बस बँधे हुए रह जाते हैं ॥
कारण यह है जो जीव यहां, आसुरी प्रकृति के आते हैं ।
वे भले बुरे कामों की कुछ, पहचान नहीं कर पाते हैं ॥
शुद्धता नहीं रहती उनमें, रखते आचार अधूरे हैं ।
ईश्वर को नहीं मानते हैं, इससे बस नास्तिक पूरे हैं ॥
इस जग में वस्तु सत्य कोई, उनकी न समझ में आती है ।
निष्कारण और निराश्रय सी, यह सृष्टि उन्हें दिखलाती है ॥
जीवन का कर्तव्य वे, यह मानें मतिमन्द ।
खाना पीना खेलना, करना नित आनन्द ॥
आसुरी प्रकृति के यह प्राणी, दुष्कर्म अनेकों करते हैं ।
उनके दुष्कर्मों के कारण, जगमें नित संकट बढ़ते हैं ॥
नाना भोगों के लिये उन्हें, दरकार रहा करती धनकी ।
इच्छाएँ तङ्ग किया करतीं, उनको नित नयी-नयी मनकी ॥
वे काम-क्रोध-मोहादिक के बन्धन में जकड़े रहते हैं ।
अपनी ही बात बड़ी करके, अपनी हठ पकड़े रहते हैं ॥
होता उनके चित्त में, दर्प घमण्ड अपार ।
अपने आगे और को, गिनते तुच्छ असार ॥
ऐसे अज्ञानी मूढ़ों की, निर्मल न कभी मति होती है ।
जा जाकर बुरी योनियों में, उनकी बहु दुर्गति होती है ॥

इस दुर्गति से बचना चाहे तो काम क्रोध और लोभ तजे ।
यह तीनों द्वार नरक के हैं, इनसे बचकर नर मुझे भजे ॥
इन द्वारों से बचकर प्राणी, उज्ज्वल निर्मल हो जाता है ।
आचार सँभल जाते उसके, जिससे वह सद्गति पाता है ॥
यह मत है सकल शास्त्रों का, हैं शास्त्र इसलिये हितकारी ।
जो चलता शास्त्रविरुद्ध मनुज, होता है उसको दुख भारी ॥

इस सारे व्याख्यान का, बस इतना है सार ।
दैवी प्रकृति मनुष्य का करती है उद्धार ॥

गाना

इस जगमें आने पर प्राणी, जो दैवी प्रकृति बनाते हैं ।
उनका ही मन निर्मल होता वे ही भव से तर जाते हैं ॥
हैं काम क्रोध और लोभ कठिन, प्राणी को यह ठगते निशि दिन ।
जो इनके चंगुल से बचते, वे ही उत्तम पद पाते हैं ॥
अपने मुँह अपना गुण गाना, धन जन के मद में इतराना ।
इन दोषों से मुझ तक प्राणी आते हों तो नहिं आते हैं ॥
जो केवल नाम कमाने को, करते हैं धर्म्म दिखाने को ।
वे अपना सब कुछ किया धरा, अपने ही आप मिटाते हैं ॥
निष्ठुर पर-निन्दक नीच निरा, रहता जिनका मन मैल भरा ।
वे दारुण दुःख उठाते हैं, और पीछे से पछताते हैं ॥
जो मुझको भजते प्रीति-सहित, श्रद्धा निष्ठा और रीति सहित ।
उनको ही मैं अपनाता हूँ, जो यों मुझको अपनाते हैं ॥

—०—

अर्जुन ने भगवान् से, अब पूछी यह बात ।
"शास्त्र रीति को छोड़कर, क्या फल होता तात ?
यज्ञ करे श्रद्धा सहित, तजकर शास्त्र-विधान ।
तो क्या होता व्यर्थ सब, प्राणी का सामान ?"

मधुसूदन बोले—"हे अर्जुन, श्रद्धा ही नर में सर्वस है ।
पर, सत् रज तम से श्रद्धा यह, सात्त्विक राजस और तामस है ॥
सात्त्विक श्रद्धावाला प्राणी, करता है यज्ञ देवतों का ।
राजस श्रद्धावाला करता, आराधन यक्ष-राक्षसों का ॥
श्रद्धा जिसमें तामस होती, वह तामस यज्ञ रचाता है ।
भूतों को और पिशाचों को भजता है और रिझाता है ॥
अब शास्त्र-विरुद्ध लोभ-वश हो, जो प्राणी यज्ञ रचाते हैं ।
उनके वे सारे अनुष्ठान—आसुरी यज्ञ कहलाते हैं ॥

श्रद्धा के समतुल्य ही, सत्-रज-तम से युक्त ।
होते हैं संसार में, सारे कर्म उपयुक्त ॥

आहार-यज्ञ-तप-दान आदि, सब सत्-रज-तममय होते हैं ।
जैसा स्वभाव होता वैसा, यह सब निस्संशय होते हैं ॥
अब अलग अलग बतलाता हूं, सात्त्विक भोजन वह कहलाता ।
जो आयु बढ़ाए, बल देवे, चिकना हो, प्रिय हो, सुखदाता ॥
राजसी प्रकृति के जीवों को, ऐसे भोजन लगते प्यारे ।
जो होते हैं चरपरे तीक्ष्ण, खट्टे, रूखे, सूखे सारे ॥
अब तामस प्रकृति प्राणियों के मन का वह भोजन भाता है ।
जो गन्दा जूठा होता है, ठण्डा बासी कहलाता है ॥
ऐसी ही बात यज्ञ की है, सात्त्विक वह यज्ञ कहाते हैं ।
जो फल का लोभ दूर करके, विधि-विहित रचाये जाते हैं ॥
लेकिन वे यज्ञ राजसी हैं, जो किए जायँ फल पाने को ।
अथवा अभिमान जताने को, या धन दौलत दिखलाने को ॥
तामस यज्ञों की गिनती में, वह यज्ञ गिनाए जाते हैं ।
जो बिना दान दक्षिणा दिए विधि-रहित रचाये जाते हैं ॥

कायिक, वाचिक, मानसिक तप के तीन प्रकार ।
तीन-तीन हर एक के भेद त्रिगुण अनुसार ॥
सात्विक तप उसको कहते हैं, जो मनका कलमष खोता हो ।
जो बदले में कुछ पाने की इच्छा से कभी न होता हो ॥
राजस तप का बस यह ढँग है, वह होता है दिखलाने को ।
या प्राणी उसे किया करता, अपना कुछ काम बनाने को ॥
तामस तप वह कहलाता है, जिससे आपा दुख पाता हो ।
जो मोहन मारण जारण को, औरों पर घात चलाता हो ॥
इसी तरह प्रख्यात है, तीन तरह का दान ।
पण्डितजन हैं जानते—तीनों की पहचान ॥
जो ठीक पुरुष को ठीक समय, श्रद्धा के साथ दिया जाता ।
बदला जिसका चाहा न जाय, वह सात्विक दान कहा जाता ॥
लेकिन जो बदले की खातिर, देता है और जताता है ।
अर्जुन, वह उसका दान, निरा, राजसी दान कहलाता है ॥
अब तामस है वह दान कि जो, अपमान समेत किया जाये ।
जब जहां जिसे मिलना चहिए, तब वहां न उसको मिल पाये ॥
सत् रज तम का यह हुआ, अब तक जो विस्तार ।
समा रहा है ब्रह्म में, वह सारा व्यापार ॥
सत् रज और तम यह तीनों गुण, जो माया के कहलाते हैं ।
सो तीनों परब्रह्म—द्वारा, जग में उपजाये जाते हैं ॥
माया जो परब्रह्म की है, वह रहती सत् रज तम गुण में ।
और गुण यह रहते ब्रह्म बीच, पर रहता ब्रह्म नहीं उन में ॥
कहते हैं शास्त्र "ओंतत्सत्", सो है यह वाक्य पवित्र सुघर ।
ब्राह्मण हैं, वेद हैं, यज्ञ भी हैं, इस एक वाक्य ही के अन्दर ॥

अब ब्राह्मण, वेद, यज्ञ, यह सब, त्रिगुणात्मक माने जाते हैं ।
सत् रज और तम में बिंधे हुए सत्-रज-तम-मय कहे जाते हैं ॥
इसलिए जगत् में प्रलय तलक, यह गुण चलते ही जायेंगे ।
इच्छा करने पर भी प्राणी, इन सबको मेट न पायेंगे ॥
बस एक ऐसा है उपाय, जो करता काम हजारों में ।
वह यह कि मनुज का मन न फँसे, त्रिगुणों के विविध विकारों में ॥
फिर कहता हूँ है ठीक यही, जग के सब कर्म किये जायें ।
बस इतना ध्यान रहे उनमें, मनकी वृत्तियां न फँस पायें ॥
कर्मों के फल को पाने की, जिसके जी में कुछ चाह न हो ।
जिसको जीने या मरने की, सुख और दुख की पर्वाह न हो ॥
वह प्राणी त्रिगुणों से छुटकर, सर्वदानन्द बन जाता है ।
जीते ही जी इस जीवन में, सच्चिदानन्द कहलाता है ॥"

बोला अर्जुन—"आप हैं, कहने योग्य समर्थ ।
"ॐ तत्सत्" इस वाक्य का, कहिये मुझसे अर्थ ॥

भगवान् बोलने लगे वचन "अर्जुन, जो "ॐ" कहाता है ।
उस "ॐ" का अर्थ ब्राह्मण है, जो प्रथम सृष्टि में आता है ॥
यह ब्राह्मण और नहीं कोई, ब्रह्मा हैं वेदों के ज्ञाता ।
जिन ब्रह्मा के द्वारा यह सब, पूरा संसार रचा जाता ॥
"तत्" शब्द का केवल अर्थ यही, जो जप तप यज्ञ किये जायें ।
उन जप तप यज्ञों के फल की, प्राणी न करें कुछ इच्छायें ॥
अब रहा अर्थ "सत्" का बाक़ी, सो "सत्" अच्छे को कहते हैं ।
सुन्दर, अनुकूल, सरल, सुखकर, यह अर्थ भी उसमें रहते हैं ॥
जो भाव यज्ञ के हित होवें, वह भी "सत्" माने जाते हैं ।
यज्ञार्थ कर्म जितने हैं वे, सबके सब 'सत्' कहलाते हैं ॥

"ॐ तत्सत्" वाक्य यह, है सब जग का मूल ।
तत्व समझ इस वाक्य का, मिटे मोह का शूल ॥
इस मधुर वाक्य को ज्ञानीजन संकेत ब्रह्म का लखते हैं ।
इससे अपने सब कामों का आरम्भ "ॐ" से करते हैं ॥
अब बस केवल यह कहना है, कुछ 'असत् कर्म" कहलाते हैं ।
यह वह हैं जिन्हें तमोगुण से, प्राणी जग बीच रचाते हैं ॥
श्रद्धा के बिना यज्ञ करना, या जप तप होम दान करना ।
अर्जुन, सब असत् कर्म हैं यह, होता है इन से दुख भरना ॥
यह असत् कर्म हैं व्यर्थ सभी, इनसे उद्धार नहीं होता ।
इस लोक में या परलोक में भी, नर का उपकार नहीं होता ॥

इस प्रकार तुम से कहा—जो मैंने वक्तव्य ।
फिर बतलाता हूँ तुम्हें, उस सब का मन्तव्य ॥

थोड़े शब्दों में यों समझो, दुनिया धोखे का धन्दा है ।
जीवों को बांध फँसाने को, फेंका माया ने फन्दा है ॥
यह माया मैं उपजाता हूँ, जो त्रिगुणमयी कहलाती है ।
सत् रज तम अपने गुण लेकर, जड़ चेतन जगत् बनाती है ॥
यह ही तीनों गुण माया के, व्यापक स्वभाव में रहते हैं ।
जिससे कि स्वभावों को ज्ञानी, उत्तम मध्यम लघु कहते हैं ॥
जो होता है जिसका स्वभाव, वह वैसे कर्म किया करता ।
जो जैसे कर्म किया करता, वह फल भी वैसे ही भरता ॥
लेकिन यह फल भरनेवाला, जो जीव है सो अविनाशी है ।
है अंश तेज का मेरे ही, इससे वह स्वयं प्रकाशी है ॥
यह स्वयं प्रकाशी अंश मेरा, ऐसे चक्कर में आया है ।
जिससे इस दीन बापुरे ने, अपने को आप भुलाया है ॥

आवश्यकता बस इतनी है, यह निज स्वरूप को जान सके ।
और माया की मोहिनि मूरति, अच्छी प्रकार पहचान सके ॥
यह कार्य साधने को प्राणी, ज्ञानी होवे और मनन करे ।
यदि ज्ञान मनन बन पड़े नहीं तो फिर बस मेरा भजन करे ॥

ध्यान धरे मन से मेरा, करे न चित्त उदास ।
समझे मुझको हर, समय, हर दम अपने पास ॥
घट घट में संसार के, व्यापक मैं भरपूर ।
प्रेम से नित्य समीप हूं, प्रेम नहीं तो दूर ॥

गाना

ज्ञानी को कहीं रहता हूँ, भक्तों को कहीं हूँ ।
यह बात मुझी में है कि हूँ और नहीं हूँ ॥
संसार मेरा रूप है मेरा ही रँग है ।
जल हूँ, मैं अनल हूँ, मैं अनिल हूँ, मैं जिमीं हूँ ॥
गोलोक में रहता हूं न वैकुण्ठ में रहता ।
रखते हैं मुझे भक्त जहाँ भी मैं वहीं हूँ ॥
क्यों जाते हो शैलों में गुफाओं में बनों में ।
"निर्गुण" जो मुझे ध्यान से देखो तो यहीं हूँ ॥

—०—



नोट — इससे आगे ी कथा "अर्जुन का समाधान" नामक पुस्तक में पढ़िये ।

पं० राधेश्यामजी कथावाचक द्वारा लिखित नाटक

वीर अभिमन्यु	१॥)
महर्षि-वाल्मीकि	१॥)
सती पार्वती	१॥)
ईश्वर-भक्ति	१॥)
परम-भक्त प्रह्लाद	१॥)
परिवर्तन	१॥)
श्रीकृष्ण-अवतार	१॥)
रुक्मिणी-मङ्गल	१=)
द्रौपदी-स्वयम्वर	१॥)
श्रवणकुमार	१=)
ऊषा-अनिरुद्ध	१=)
मशरिक़ी हूर	१॥)
भारत-माता	|=)
कृष्ण-सुदामा	|=)
शान्ति के दूत भगवान् श्रीकृष्ण	|=)
सेवक के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण	|=)
घण्टा-पन्थ	|=)

नोट—नाटकों में वीर अभिमन्यु, श्रवणकुमार, और मशरिक़ी हूर, उर्दू में भी छपकर तैयार हैं। दाम वही जो हिन्दी में हैं।

न्यू अल्फ़्रेड थियेट्रिकल कम्पनी आफ़ बम्बई द्वारा खेले गये

असली व मुकम्मिल नाटक

भूलभुलैयाँ	१)	दिलफ़रोश	१)
चलता पुर्जा	१)	शरीफ़ बदमाश	१)
ख़्वाबे हस्ती	१)	अछूता दामन	१)
ख़ूबसूरत बला	१)	हिन्दू विधवा	१=)

भारत व्याकुल थियेट्रिकल कम्पनी लिमीटेड आफ़ मेरठ द्वारा खेले गये

असली व मुकम्मिल नाटक

तेग़ेसितम	१=)	सम्राट् चन्द्रगुप्त	१=)

अन्य नाटक

महाराजा भर्तृहरि	१=)	पृथ्वीराज	१॥)

भजन गाने व ग़ज़लें

श्रीराधेश्याम-गीताञ्जलि	१॥)
राधेश्याम विलास	१=)
राधेश्याम-कीर्त्तन	॥)
राधेश्याम भजनमाला	१=)
प्राचीन भजनमाला	|=)
मोहन-कवितावली	॥)
मुसाफ़िर की पाकेट बुक	॥)
प्रेम-रत्नावली	=)
निजानन्द प्रदीपिका	=)
गृहिणी गीताञ्जलि	|=)
आनन्द-लहरी	-)॥
मीरा भजनमाला	॥)
बोध-प्रकाशी	|=)
पद्य-पुष्पांजलि	-)॥
आरती संग्रह	-)॥
ग़ज़लों का गुलदस्ता	=)
ग़ज़ल-सागर	॥)
पद-पुञ्ज	-)॥
मोहन भजनमाला	|=)
मोहन गीतावली	|)॥
मोहन संगीत शिक्षा	|=)
सीताराम-कीर्तन	॥)

अमर-गीत-माला

मीठी गुञ्जार	=)	मधुर मुरली	=)
रसीली तान	=)	कुसुम-कुंज	=)
बसंतवाटिका	=)	पद्म-पराग	=)

अन्य पुस्तकें

भक्त स्त्रियाँ	|)	अमरकोष	|=)
सतलड़ी	॥)	पञ्चों का प्याला	|)॥
अजायब घर	॥)	धनुर्विद्या	॥)
प्रेत-लोक	१॥)	नौलखाहार	१॥
ज्योतिष-प्रकाश	॥)	दृष्टांत महासागर	१॥)
वियोग-कथा	|=)	मोहन माला	=)
हनुमानचालीसा	-)॥	सुन्दरकाण्ड	|=)

पता—श्रीराधेश्याम-पुस्तकालय, बरेली

नक़ली किताबों से बचिये

हमारी रामायण और हमारे नाटकों का काफ़ी प्रचार देखकर लोगों ने उसी रंग और रूप की नक़ली किताबें छाप छापकर प्रकाशित करदी हैं। नक़्क़ालों की कई बरस की कोशिश का नतीजा यह है कि बाज़ार में नक़ली किताबों की भरमार है। यह नक़ली किताब)॥ में बुक्सेलर को दी जाती है, जिसे बुकसेलर -) या =) या ≡) में बेचकर फ़ायदा उठाता है और इस प्रकार ग्राहक को धोखा दिया जाता है। ग्राहक जब ऐसी किताब को घर ले जाता है तो पछताता है। ग्राहक का ऐसी धोखेबाज़ी से बचाने के लिये अब हम अपनी हर एक किताब के ऊपर अपनी तस्वीर देने लगे हैं, जैसी कि इस किताब पर आप देख रहे हैं। अब आइन्दा से आप धोखा न खाइयेगा—

ध्यान रहे—

जिन किताबों पर—"राधेश्याम" या—"राधेश्याम शागिर्द" या "तर्ज़—राधेश्याम" छपा रहता है, वह हमारे यहाँ की नहीं हैं। हमारे यहाँ की किताबों पर हमारे यह दस्तख़त भी रहते हैं। इन्हें पहचान लीजिये—

राधेश्याम

भवदीय—

राधेश्याम कथावाचक

मालिक—श्रीराधेश्याम पुस्तकालय व प्रेस, बरेली।

श्रीमद्भगवद्गीता-संख्या ६

अर्जुन का समाधान



प्रकाशक—
नेपाल गवर्नमेण्ट से 'कथावाचस्पति' की पदवी प्राप्त-
कीर्तन-कला-निधि, काव्य-कला-भूषण, श्रीहरि-कथा-विशारद, कविरत्न—

अध्यक्ष—श्रीराधेश्याम-पुस्तकालय, बरेली।

मूल्य ।)॥ आने

०राधेश्यामजी कविरत्न लिखित नवीन कृति

कृष्णायन

जन्माष्टमी ।=) नन्द-महोत्सव ।=)

कमलीवाला कन्हैया ।=) गिरिवरधारी ।=)

रास-रहस्य ।=) कंस-वध ।=)

नन्द-नन्दन-वसुदेव-नन्दन ।=)

सम्पूर्ण सातों भाग एक सुन्दर जिल्द में छः आने अधिक देने पर अर्थात् तीन रुपए में मिलेंगे। डाक महसूल ।≡) अलग

रुक्मिणी-मंगल

(राधेश्याम रामायण की तर्ज़ में)

रुक्मिणी-जन्म ।=)

रुक्मिणी का कृष्ण प्रेम ।=)

रुक्मिणी की सगाई ।=)

रुक्मिणी का पत्र-लेखन ।=)

रुक्मिणी का गिरिजा-पूजन ।=)

रुक्मिणी का भ्रातृस्नेह ।=

रुक्मिणी विवाह ।=

सम्पूर्ण सातों भाग एक सुन्दर जिल्द में छः आने अधिक देने पर अर्थात् तीन रुपए में मिलेंगे। डाक महसूल ।≡) अलग

श्रीमद्भगवद्गीता

(राधेश्याम रामायण की तर्ज़ में)

अर्जुनमोह ।)॥ विराट्रूप-दर्शन ।)॥

आत्मा की अमरता ।)॥ जीव-ब्रह्म-विवेक ।)॥

कर्म-योग ।)॥ अर्जुन का समान ।)॥

नोट—सम्पूर्ण ६ भाग एक सुन्दर जिल्द में ।—) अधिक देने पर, अर्थात् २) में, मिलेंगे तथा जिल्ददार गुटका १॥)रु० में मिलेगा। डाक महसूल गुटका ।—) अलग अलग भाग पर ।=)।

दुर्गा—चरित्र

(राधेश्याम रामायण की तर्ज़ में)

महिषासुर-वध ।=)

शुम्भ का उत्पात ।=)

चामुण्डा का पराक्रम ।=)

रक्त-बीज की लड़ाई ।=)

शुम्भ और निशुम्भ का वध ।=)

नोट-सम्पूर्ण ५ भाग एक सुन्दर जिल्द में छः आने अधिक देने पर अर्थात् २।) में मिलेंगे, तथा जिल्ददार गुटका १॥) में मिलेगा। डाक महसूल गुटका ।—) अलग अलग भाग पर ।=)।

महाभारत

(राधेश्याम रामायण की तर्ज़ में

भीष्म-प्रतिज्ञा ।=)

भीष्म-पराक्रम ।=)

पाण्डव-जन्म ।=)

पाण्डवों का बाल्य-काल ।=)

पाण्डवों की शस्त्र-परीक्षा ।=)

लाक्षागृह ।=)

बक-संहार ।=)

द्रौपदी-विवाह ।=)

सुभद्रा-हरण ।=

राजसूय-यज्ञ ।=)

द्रौपदी-वस्त्र-हरण ।=)

किरातार्जुन-युद्ध ।=)

यक्ष-सम्वाद ।=)

कीचक-वध ।=)

अभिमन्यु विवाह ।=)

अन्य कथायें

(राधेश्याम रामायण की तर्ज़ में-)

नरसी की हुंडी ।)॥

श्रीसत्यनारायण की कथा ।=)

प्रह्लाद-चरित्र ।=)

ध्रुव-चरित्र ।=)

सुदामा-चरित्र ।=)

मोरध्वज-चरित्र ।=)

भर्तृहरि-चरित्र ।=)

महाराणा प्रतापसिंह ।=)

सत्यवादी हरिश्चन्द्र ।=)

सावित्री-सत्यवान् ।=)

मीराबाई ।=)

भक्त-अम्बरीष ।=)

अभिमन्यु की वीरता ।=)

गुरु गोविन्दसिंह ।=)

गुरु नानक ।=)

बुद्ध-चरित्र ।=)

द्रौपदी-लीला ।)॥

महाराजा दिलीप ।)॥

सती स्वयम्वर ।=)

सती मोह ।=)

महर्षि चरित्र (७) भाग १॥)



* श्रीमद्भगवद्गीता *

संख्या—६

लेखक—
प० रामनारायण पाठक

अर्जुन का समाधान

सम्पादक और प्रकाशक—
नेपाल गवर्नमेण्ट से "कथावाचस्पति" की पदवी प्राप्त-
कीर्तन-कला-निधि, काव्य-कला-भूषण,
श्रीहरि-कथा-विशारद, कविरत्न—
प० राधेश्याम कथावाचक,
अध्यक्ष—
श्रीराधेश्याम-पुस्तकालय
बरेली

सातवीं बार २०००] सन १९५६ ई० [मूल्य साढ़े चार आने

प्रिंटर—पं० रामनारायण पाठक, श्रीराधेश्याम-प्रेस, बरेली।





प्रार्थना

सुनाता ही रहूँ अपनी व्यथाओं की कथा कबतक ?
बता दो, धैर्य हो जाए, करोगे तुम कृपा कबतक ?
सुखी सन्तुष्ट इस संसार में रहते हैं जब लाखों ।
मेरे जीवन-मरुस्थल में न बरसेगी सुधा कबतक ?
ठिकाना आजतक अपनी प्रतिष्ठा का नहीं कोई ।
उचकता झाँकता फिरता रहूँ यों जा बजा कबतक ?
कहीं का राज दे दो याचना मैं यह नहीं करता ।
पर अपने काम को औरों का ताकूं आसरा कबतक ?
तुम्हारा हूँ तुम्हारा हूँ तुम्हारा हूँ तुम्हारा हूँ ।
मुझी को दुःख का दाबे-रहेगा दबदबा कबतक ?
तुम्हारे देखने को कुछ न पूछो कितनी चाहत है ।
तुम्हारा मिल सकेगा ऐ मेरे 'निर्गुण' पता कबतक ?





कथा प्रारम्भ

सुन सुनकर नँदनन्द का, कथन अमोल अमन्द ।
अर्जुन के मन में बढ़ा, क्रम क्रम से आनन्द ॥
पुलकित बोला अन्त में–"हे यदुपति यदुराय !
'त्याग' और 'सन्यास' का, कहिये तत्व बुझाय॥"

यह सुनकर बोले कृष्णचन्द्र–"जो काम्य कर्म कहलाते हैं ।
जो मन की किसी कामना के पाने को लोग रचाते हैं ॥
ऐसे कर्मों के फल से ही, माया का बन्धन आता है ।
इन कर्मों का तज देना ही, सच्चा 'सन्यास' कहाता है ॥
अब रहा 'त्याग' सो हे अर्जुन, कहलाता सच्चा त्याग तभी ।
कर्मों के फल पाने की जब, इच्छायें दे नर त्याग सभी ॥
कुछ लोगों का कहना यह है, बस कर्म बखेड़े की जड़ हैं ।
इसलिए छोड़दे कर्मों को, फल करते उनके गड़बड़ हैं ॥
पर उचित बात यह है अर्जुन, छोड़ना कर्म का अनुचित है ।
हां, बिना चित्त आसक्त किए, उनका करना ही समुचित है ॥
जो कर्म बनाये हैं जग में, वे करने योग्य बनाये हैं ।
यह करने योग्य कर्म तजकर, नर सन्यासी न कहाये हैं ॥

तीन तरह का त्याग है, इस जग बीच प्रधान ।
तामस, राजस, सात्त्विक, जानें इसे सुजान ॥
तामस वह त्याग कहाता है, जो होता ज्ञान-हीनता से ।
और राजस त्याग उसे कहते, जो हो पुरुषार्थ-हीनता से ॥
हां, करने योग्य कर्म करके, फल उनका त्याग करे कोई ।
तो सात्त्विक त्याग कहायेगा, अर्जुन, उस नर का त्याग सोई ॥
जो अप्रिय कर्मों से न डरे, प्रिय कर्मों में तल्लीन न हो ।
वह ही त्यागी सन्यासी है, जिसका मन विषयाधीन न हो ॥
कर्मों को छोड़ नहीं सकता, जो प्राणी कायाधारी है ।
इसलिए कर्म को तजे नहीं, फल तजे यही हितकारी है ॥

फल इच्छा को चित्त रख, कर्म करें जो लोग ।
पाते वे परलोक में, तीन तरह का भोग ॥
यह भोग कभी अच्छा होता और कभी बुरा भी होता है ।
पुनि कभी बुरा अच्छा मिलकर, वह मिला-जुला भी होता है ॥
यह फल उसको ही मिलता है, जो कर्मों में बिंध जाता है ।
लेकिन, त्यागी या सन्यासी, कुछ भी फल कभी न पाता है ॥
इसलिए भलाई इसमें है, सच्चा त्यागी सन्यासी हो ।
कर्मों के फल की अभिलाषा, तज दे सर्वथा उदासी हो ॥
बतलाया है शास्त्र ने, कर्मों का यह मर्म ।
पांच कारणों से सदा, होते हैं सब कर्म ॥
पहला कारण तो है अर्जुन, अस्थान बताया जाता है ।
दूसरा कारण वह कर्ता है, जो सारा कर्म रचाता है ॥
तिसरा कारण साधन होते, चौथा व्यापार हुआ करते ।
पांचवें मुख्य कारण को सब, इस जग में दैव कहा करते ॥

संसार बीच अच्छे बोदे, मन से, शरीर से, वचनों से ।
होते हैं जितने कर्म सभी, होते इन पांच कारणों से ॥
लेकिन, जो जन अज्ञानी हैं, वे वृथा दर्प मन भरते हैं ।
अभिमान--सहित कह देते हैं, हम कर्म जगत् के करते हैं ॥
जो ज्ञानी है और पण्डित है, वह सच्चा तत्त्व जानता है ।
अपने कर्मों का, अपने को, कर्ता वह नहीं मानता है ॥
ऐसे ज्ञानी को कर्मों का–फल कभी न दुख पहुंचाता है ।
वह कभी किसी का बध करदे, तो भी न पाप कुछ आता है ॥

और सुनो विस्तार से, अर्जुन, भले प्रकार ।
इसी विषय पर और भी, हैं कुछ गूढ विचार ॥

ज्यों नभ में बादल आते हैं, बूँदों के होने से पहले ।
त्यों कर्म-प्रेरणा होती है, कर्मों के होने से पहले ॥
जैसे कुम्हार को मट्टी का, जब घड़ा रचाना होता है ।
तो पहले वह गुनता मन में, जो उसे बनाना होता है ॥
यह मन के भीतर का गुनना, बस कर्म-प्रेरणा है अर्जुन ।
गुनने के पीछे जो होता, वह कर्म-साधना है अर्जुन !
इस कर्म-प्रेरणा के अन्दर, ज्ञाता कुम्हार कहलायेगा ॥
और वह जो घड़ा बनाता है, वह घड़ा ज्ञेय होजायेगा ।
पुनि घड़ा बनाने की रीती, बस ज्ञान बखानी जाती है ।
यह ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान, मिल कर, कर्म-प्रेरणा कहाती है ॥

कर्म-प्रेरणा की यही, रहती है पहचान ।
कर्म-साधना का सुनो, अब आगे व्याख्यान ॥

ज्यों कर्म-प्रेरणा के मैंने, तीन ही अंग दिखलाये हैं ।
त्यों कर्म-साधना के भी बस, तीन ही अंग कहलाये हैं ॥

पहला कर्ता, दूसरा करण, तीसरा कर्म माना जाता ।
अर्जुन, यों कर्म-साधना का, है त्रिविधरूप जाना जाता ॥
कर्ता वह है जो काम करे, और करण काम का साधन है ।
अब रहा कर्म सो वह है जो, इन दो से होता पूरन है ॥
पहले वाली उपमा फिर लो, 'कर्ता' कुम्हार कहलायेगा ।
जो चाक घूमता है उसका, वह करण बखाना जायेगा ॥
बर्तन जो चाक उतारेगा, वे बर्तन 'कर्म' कहायेंगे ।
इस सबका 'कर्म-साधना' ही, पण्डित-जन नाम बतायेंगे ॥

अब अर्जुन, आगे सुनो, हरो चित्त का खेद ।
कर्ता कर्म अरु ज्ञान के, तीन तीन हैं भेद ॥

सत, रज, तम, गुण जो माया के, हम पहले बतला आये हैं ।
सो सर्वव्यापक ईश्वर की नाईं सर्वत्र समाये हैं ॥
वे कर्ता-कर्म-ज्ञान में भी, देखे और पाये जाते हैं ।
यों कर्ता, कर्म, ज्ञान, तीनों, सत-रज-तममय कहलाते हैं ॥
सात्त्विक वह ज्ञान कहाता है, जिससे कि दृष्टि खुल जाती है ।
जिससे बस केवल ईश्वर की सत्ता सबमें दिखलाती है ॥
उस ज्ञान को राजस कहते हैं, जिससे विभिन्नता होजाए ।
जग के अनेकशः रूपों में, मन को अनेकता दिखलाए ॥
वह ज्ञान कहाता है तामस, जो आंखों पर पर्दा कर दे ।
सच्चाई बिना बताये ही मन में अन्धी श्रद्धा भर दे ॥

यह तो बतलाया तुम्हें, तीन तरह का ज्ञान ।
अर्जुन, यों ही कर्म भी, तीन तरह का जान ॥

जो बिना चित्त आसक्त किये, हैं धर्म समेत किये जाते ।
जिनमें कुछ घृणा व प्रीति नहीं, वह सात्त्विक कर्म कहेजाते ॥

लेकिन, जो कुछ फल पाने की, आशा से कर्म हुआ करते ।
उन सब कर्मों को पण्डितजन, बस, राजस कर्म कहा करते ॥
अब बिना विचारे शेखी से, जो कर्म रचाया जाता है ।
जो होता भ्रम–अज्ञान–पूर्ण, वह तामस कर्म–कहाता है ॥
अब कर्ता की भी बात सुनो, सात्त्विक कर्ता वह कहलाता ।
जो निर्विकार निर्लिप्त हुआ, सब कर्म करे मन हर्षाता ॥
फल पाने की इच्छा समेत, सुख दुख जिसके उर सहते हैं ।
पण्डितजन ऐसे कर्ता को, राजस कर्ता नित कहते हैं ॥
आलसी, विषादी, शोक–पूर्ण, अभिमान ऐंठ में भरा हुआ ।
ऐसा कर्ता बस तामस है, अर्जुन, जीते जी मरा हुआ ॥

इसी तरह से बुद्धि के तीन भेद हो जांय ।
धृति के भी यों ही यहां, तीन प्रकार कहायँ ॥

पहले कहता हूं बुद्धि–भेद, सात्त्विक वह बुद्धि कहाती है ।
जो भले बुरे की प्राणी को, सच्ची पहचान कराती है ॥
लेकिन, जो बुद्धि राजसी है, वह ठीक न मार्ग दिखाती है ।
क्या धर्म है और अधर्म है क्या, यह निश्चय नहीं बताती है ॥
तामस जो बुद्धि कहाती है, उसका ढंग निपट निराला है ।
काले को वह गोरा कहती, गोरे को कहती काला है ॥
अब धृति का हाल बताता हूं, सात्त्विक धृति उसको कहते हैं ।
जिससे मन वश में कर प्राणी, सब धन्धे करते रहते हैं ॥
राजस धृति वह कहलाती है जो फल इच्छा उपजाती है ।
कर्मों का फल पा लेने में, प्राणी को सफल बनाती है ॥
वह धृति तामस होती अर्जुन, जिससे कि ज्ञान खोजाता है ।
निद्रा-भय-शोक-बिषादों में, प्राणी निमग्न हो जाता है ॥

यों ही होता विश्व में, सुख भी तीन प्रकार ।
इसके भी सम्बन्ध में, सुनो शब्द दो चार ॥

जो पहले तो दुख पहुंचाता, पीछे से सुख पहुंचाता है ।
वह सुख सात्त्विक सुख है अर्जुन, उत्तम सुख माना जाता है ॥
लेकिन, जो पहले तो सुख दे, और पीछे से दुख पहुंचाये ।
ऐसा विषयों का सुख अर्जुन, जगमें राजस सुख कहलाये ॥
जो पहले पीछे सभी समय, आलस्य–मोह का कारण है ।
वह तामस सुख कहलाता है, जीवों के सुख का जारण है ॥

अर्जुन, इस संसार का, जहां तलक विस्तार ।
सत्-रज-तम का चल रहा, वहां तलक व्यापार ॥

इन सत्-रज-तम के ही कारण, नाना विध कर्म सुहाये हैं ।
जीवों के प्रकृत स्वभाव देख, उनके बहु कर्म बताये हैं ॥
ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य शूद्र, यह चार वर्ण जो कहलाते ।
इन चारों के हैं अलग अलग, कर्तव्य कर्म माने जाते ॥
कर्तव्य ब्राह्मण का यह है आस्तिक पण्डित ज्ञानी होना ।
शम-दम-तप-शान्ति-सरलता से, सारे जीवों का दुख खोना ॥
क्षत्रिय का कर्म बताया है, जनता पर नित शासन करना ।
दानी, तेजस्वी, दक्ष, शूर, होकर रण से न कभी डरना ॥
वैश्यों के लिए कहा है यह, वे खेती कर भण्डार भरें ।
गौओं का पालन प्रेम सहित, करके बहु विध व्यापार करें ॥
है कर्म शूद्र का वह जिससे, वह जन्म सफल कर सकता है ।
ब्राह्मण क्षत्री और वैश्यों की, भरपूर टहल कर सकता है ॥

अपने अपने कर्म को, करके जीव तमाम ।
पाते हैं सुख सिद्धियां, विविध भांति आराम ॥

जो जग की रचना रच करके, व्यापक जग में हो जाता है ।
वह जगन्नाथ और जगदीश्वर, माना जाता कहलाता है ॥
ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य शूद्र, अच्छे अच्छे आचरणों से ।
पूजें यदि उस जगदीश्वर को, अपने अपने नित कर्मों से ॥
तो चारों वर्णों के प्राणी, चारों पदार्थ पाजायेंगे ।
सच्चे प्राणी सच्चे मनुष्य, सच्चे योगी कहलायेंगे ॥
जो भी हों अपने कर्म नित्य, नित्यप्रति उनको किया करे ।
यदि मरे तो उनपर मरा करे, यदि जिए तो उनपर जियाकरे ॥
दुसरे वर्णों के कर्मों को ललचाना कभी नहीं अच्छा ।
औरों के कर्मों से अर्जुन, है अपना कर्म कहीं अच्छा ॥
और यों देखा जाये तो फिर, निर्दोष किसी का कर्म नहीं ।
जिसमें बिल्कुल भी धुआं न हो, होती ऐसी भी अग्नि कहीं ?

ज्ञानी और सुजान पर, है यह बात प्रसिद्ध ।
यों ही अपने कर्म कर, होते हैं नर सिद्ध ॥

आसक्ति छोड़ कर्तव्य समझ, निज कर्म किया करता है जो ।
वह पहले तो हो जाय सिद्ध फिर रहे ब्रह्म में तन्मय हो ॥
जो कर्म करे उन सबका फल, मुझको अर्पण करता जाए ।
जग की सुख दुख की भीर पड़े, तो धीर धरे नहीं घबराए ॥
चित से नित भजता रहे मुझे, तो सभी विघ्न मिट जायेगा ।
छुटकर प्राणी भव–बन्धन से, कल्याण परम पद पायेगा ।

गाना

भजे जो मुझको चित्त लगाय, जीव वह बन्धन से छुट जाय।
काम क्रोध और लोभ मोह से निर्मल रक्खे मन को।
विषय भोग का मूल्य न दे, अपने अमूल्य जीवन को॥
इन्द्रियां रक्खे जो कि दबाय, जीव वह बन्धन से छुट जाय॥
जिसके-उर में इच्छाओं का, द्वन्द्व युद्ध नहिं होय।
जिसके हृदय—भवन में जागे, ज्ञान—दीप की लोय॥
मार्ग में ठोकर वह नहिं खाय, जीव वह बन्धन से छुट जाय॥

—०—

मेरे इस उपदेश पर, चल करके स्वच्छन्द।
अर्जुन, तुम रह सकोगे, सब प्रकार सानन्द॥
लेकिन, यदि माना नहीं, मेरा यह उपदेश।
तो फिर सहने होयँगे, नये नये नित क्लेश॥
पर मुझको है निश्चय पूरा, उपदेश मेरा तुम मानोगे।
इस कुरुक्षेत्र में इसी समय, घनघोर युद्ध तुम ठानोगे॥
कारण यह है इस दुनिया में, यद्यपि नर है स्वेच्छाचारी।
लेकिन फिर भी रहता है वह, निज स्वभाव का आज्ञाकारी॥
तुम क्षत्री हो क्षत्रीपन का, जब भाव प्रबल हो जायेगा।
तो तुम्हें तुम्हारा ही स्वभाव, रण करने को उकसायेगा॥
जग के जीवों का जुदा जुदा, जो यह स्वभाव कहलाया है।
सो मेरे द्वारा रची हुई, मेरी ही अद्भुत माया है॥
मैं इस माया ही के बल से, जग के व्यापार रचाता हूं।
इस माया से ही जीवों को, प्रेरित कर कर्म कराता हूं॥
इसलिए युद्ध से हट जाना, तुमसे न कभी हो पायेगा।
तुम सोचोगे मैं लड़ूं नहीं, पर ईश्वर तुम्हें लड़ायेगा॥

बस अन्तिम निर्णय यही हुआ, सब बात छोड़ दो ईश्वर पर ।
और अपना निश्चित कर्म करो, निर्लिप्त और निर्भय होकर ॥

बतलाया मैंने तुम्हे, यह अति उत्तम ज्ञान ।
जिसे ज्ञान होजाय यह, वह नर मुक्त-समान ॥

ऐसा नर मुक्त-समान जो हो, वह बन्धन से छुट जाता है ।
जैसे भी चाहे कर्म करे, पर फल उनका नहीं पाता है ॥
यह बात बड़े ही गुर की है, जो मैंने प्रकट बतायी है ।
जिसने यह बात समझली है, उसने उत्तम गति पायी है ॥
अब सुनो, मित्र हो तुम मेरे, इसलिए साफ़ बतलाता हूं ।
जो लाख गुरों में का गुर है, बस वही तुम्हें समझाता हूं ॥
तुम सारी चिन्ताएँ तजकर, मेरी शरणागत हो जाओ ।
मैं तुम्हें बचालूँगा निश्चय सब पापों से—मत घबराओ ॥

बड़ी सुघर यह बात है, गुप्त गुह्य और गूढ़ ।
ज्ञानी इसको जानते, किन्तु न जानें मूढ़ ॥

यह मेरी गुप्त बात अर्जुन, धारण करलो उर अन्तर में ।
और उठो शस्त्र ले युद्ध करो, इस कुरुक्षेत्र के संगर में ॥
इस मेरे सुघर ज्ञान को तुम, सबको कहकर मत बतलाना ।
जो भक्त न हों श्रद्धालु न हों, उनको न यत्न कर समझाना ॥
कारण यह है जो जन, मेरा निन्दक है और अभिमानी है ।
यह अमल विमल ज्ञानोपदेश, उसके नज़दीक कहानी है ॥
ऐसे जीवों को मेरा यह, यदि ज्ञान सुनाया जाता है ।
तो महिमा मेरी घटती है आत्मा मेरा दुख पाता है ॥
हां, मेरे प्यारे भक्तों को, जो जन यह ज्ञान बताते हैं ।
वे मेरे प्रेमी होते हैं, मुझमें आकर मिल जाते हैं ॥

इस विस्तृत भूतल पर होते, मेरे अति हितकारी सोई ।
उनसे बढ़कर प्यारा मुझको, दूसरा नहीं होता कोई ॥

कहें सुनें जो प्रेम से, यह सुन्दर सम्वाद ।
उन्हें सताता है नहीं, भवभय विषम विषाद ॥
जहां कि इस सम्वाद की, कथा बखानी जाय ।
ज्ञानयज्ञ से वह मेरी, पूजा मानी जाय ॥

व्याख्यान—भगवान् को जितना उपदेश करना था कर चुके । श्रीमद्भगवद्गीता के नाम से जो पवित्र और पुनीत उपदेश संसार में प्रसिद्ध है, वह यहां पूरा होगया । अब सम्पूर्ण गीता के सार को संक्षेप के साथ भगवान् फिर कहते हैं—]

अर्जुन, अबतक मैंने जितना, यह ज्ञान तुम्हें समझाया है ।
कहता हूं फिर संक्षेप--सहित, साद्यन्त जो कि बतलाया है ॥
पृथ्वी,जल,अनल,अनिल और नभ,यह पांच तत्त्व कहलाते हैं ।
इन पांचों से ही जीवों के, प्रस्थूल देह बन जाते हैं ॥
मेरी माया निज लीला से, यह पांचों तत्त्व रचाती है ।
और तत्त्व रचाकर फिर वह ही, जीवों की देह बनाती है ॥
इस देह–रूप कठपिंजरे में, जीवात्मा आ फँस जाता है ।
माया के चलते चक्कर में, पड़कर के चक्कर खाता है ॥
लेकिन जब देह नष्ट होती, तो उसका नाश नहीं होता ।
वह अंश मेरा अविनाशी है, सो उसका ह्रास नहीं होता ॥
प्रस्थूल देह जब नष्ट हुई, तो उसका नाश न हो पाया ।
जब एक देह से निकला तो, दुसरी के बीच चला आया ॥
इसलिए किसी के मरने का, कुछ शोक चित्त में मत लाओ ।
जड़ देह अगर मिटती है तो, मिट जाने दो मत दुख पाओ ॥

दुख और सुख जो होंय सो, उनका है यह मर्म ।
आंख कान इन्द्रियों के, अर्जुन, हैं यह धर्म ॥

सम्बन्ध बाहरी चीजों का, जब आंख कान से होता है ।
तब ही प्राणी सुख दुख पाकर, हर्षित होता या रोता है ॥
इन सुख दुख को जो दृढता से, सहते हैं वे सुख पाते हैं ।
जो सुख दुख में नहिं डिगते हैं, वे ही योगी कहलाते हैं ॥
बेटे पोते भगिनी भाई, प्यारी सुकुमारी वर नारी ।
यह जग की नातेदारी हैं, जीते जी की नातेदारी ॥
जब प्राण पखेरू उड़ जाता, तब यह नाते छुट जाते हैं ।
केवल कर्मों के अंकुर ही, जीवों के सँग जा पाते हैं ॥
इसलिए मोह घरवालों का, अर्जुन, कुछ लाभ न पहुंचाता ।
इस मोह फांस में पड़कर ही, नहिं जीव मोक्षपद पर जाता ॥

इसी मोह की भांति हैं, और झञ्झटें चार ।
काम क्रोध मद लोभ जो, मनके चार विकार ॥

मन के इन बुरे विकारों से, बुद्धी दूषित हो जाती है ।
जिससे जगमें प्राणी की कृति, निर्मल नहीं होने पाती है ॥
फल यह होता है नाना विध, ऐश्वर्य भोग सुख पाने को ।
नाना विध रहता मनुज व्यस्त, नाना विध कर्म रचाने को ॥
और चूँ कि कर्म यह होते हैं, कुछ स्वार्थ साधने को मन का ।
इसलिए न बीते यक क्षण भी, सुख से जीवों के जीवन का ॥
कर्मों की धुन में जब कि जीव, इस विध तन्मय हो जाते हैं ।
तब उनका भोग भोगने को, चौरासी में भरमाते हैं ॥
अतएव उचित है प्राणी को, मन रक्खे दूर विकारों से ।
सच्चा सुख नष्ट न होने दे, जग के झूठे व्यवहारों से ॥
सच्चे सुख का है रूप यही, सन्तोष शान्ति मनमें आए ।
पैदा होने और मरने का, आज़ार जीव का छुट जाए ॥

यह बात तभी होसकती है, जब मन क़ाबू में बना रहे ।
आनन्द शोक सुख और दुख में, यकसां हालत में सधा रहे ॥
यों मन को साध जीव अपने, निश्चित कर्मों को किया करे ।
पर, हां, उनके फल पाने की, अभिलाषा कुछ मन में न धरे ॥

अभिलाषा जब हो न कुछ तब मन रहे विरक्त ।
हो जग के व्यापार में, कभी न वह आसक्त ॥
रहता जो संसार में, कर इस तरह उपाय ।
भव--बन्धन उसका छुटे, और मोक्ष मिल जाय ॥

अब केवल इतनी बात रही, मन किस प्रकार सध पायेगा ।
यह बिजली जैसा चंचल है, कैसे मुट्ठी में आयेगा ।
सो इसका है बस यत्न यही, क्रम क्रम से दूर विकार करे ।
थोड़ा थोड़ा अभ्यास नित्य करके मन पर अधिकार करे ॥
सज्जन पुरुषों की शिक्षा से, मन का घोड़ा दब जाता है ।
जप--तप--यज्ञादिक द्वारा भी, प्राणी मन पर जय पाता है ॥
बस इतनी बात याद रक्खे, यह काम नहीं पल छिन का है ।
मन को क़ाबू में लाने का उद्योग तो तीसों दिन का है ॥
यदि लगा रहेगा साधन में तो सिद्धि प्राप्त हो जायेगी ।
माया की अड़चन फिर उसके, नहिं पास फटकने पायेगी ॥
मन पर क़ाबू पाने का यह उद्योग व्यर्थ नहिं जाता है ।
हे पार्थ, जन्म--जन्मान्तर में, यह अपना फल दिखलाता है ॥
इसलिए उचित है प्राणी को, मन वश करने का यत्न करे ।
मन वश में जब होजाये तो, कर्मों को भी करते न डरे ॥
मन वश में आ जाने पर नर कितनी ही बातें जानेगा ।
अपना और इस सारे जग का सच्चा स्वरूप पहचानेगा ॥

मन वश करने का न जो, यह बन पड़े उपाय ।
तो फिर सीधी लीक है, शरण मेरी आजाय ॥
अपने मन और बुद्धि को, करे मेरे आधीन ।
अपनी सारी वृत्तियां, कर दे मुझ में लीन ॥

समझे मुझको जगका स्वामी, सबका कर्ता सब का भर्ता ।
फिर उचित समय के आने पर, सम्पूर्ण सृष्टि का लयकर्ता ॥
सर्वत्र झलक देखे मेरी, क़तरे में भी सागर में भी ।
जुगनू में भी सूरज में भी, नारी में भी और नर में भी ॥
जलचर थलचर नभचर सबमें, सब समय मुझे व्यापक माने ।
इस नश्वर जगमें मुझको ही, अविनश्वर परमेश्वर जाने ॥
यह मन के भाव रहेंगे तो, सारी बातें सध जायेंगी ।
निर्मलता दृढता और थिरता, क्रम क्रम से मन में आयेंगी ॥
जब नर मेरा हो जाता है, तो मैं उसका हो जाता हूं ।
वह मेरे गुण नित गाता है, मैं उसके गुण नित गाता हूं ॥

गाना

मेरा नाम हरदम जो गाता रहेगा ।
मुझे भी वह नित याद आता रहेगा ॥
बनेगा जो मन के विकारों का बन्दा ।
वो सुख शान्ति मन की गँवाता रहेगा ॥
न सच्चे हैं सुख और दुख इन्द्रियों के ।
अगर इनमें धोखा तू खाता रहेगा ॥
तो इसमें नहीं कुछ भी सन्देह अर्जुन !
कि चोलों में तू आता जाता रहेग ॥

पिता माता भाई बहन की है ममता।
तू कबतक यूँही डगमगाता रहेगा॥
यहाँ के यह नाते यहीं पर रहेंगे।
वहाँ पर किसी से न नाता रहेगा॥
न है कोई तेरा न तू है किसी का।
समझ ले इसे, चैन पाता रहेगा॥
नियत कर्म तेरे जो हों उनको करले।
करेगा न तो धर्म जाता रहेगा॥
मगर याद रख उनमें मन फँस न जाये।
नहीं तो तुझे दुख सताता रहेगा॥
रहेगी न बाधा कोई तेरे आगे।
जो गोविन्द को तू मनाता रहेगा॥
चलेगा जगत् में जो इस भांति 'निर्गुण'।
तो जीवन तेरा जगमगाता रहेगा॥"

—०—

व्याख्यान—श्रीमद्भगवद्गीता का सार दो शब्दों में है–'ज्ञान' और 'भक्ति'। बारंबार जन्म लेने और मरने की जो झंझट जीव के पीछे लगी हुई है, वह तभी छूटती है जब जीव को ज्ञान होजाय। ज्ञान होने पर ही प्राणी को यह मालूम होता है कि मैं जगत् के व्यापारों से बिल्कुल अलग हूँ यह व्यापार मेरे नहीं बल्कि माया के हैं। मेरा उनसे रत्ती भर सम्बन्ध नहीं। ऐसी धारणा जब उसकी होजाती हैं तब जगत में रहता हुआ भी वह जगत के व्यापारों में मन नहीं फँसाता। और इसलिए जगत के दुःख सुख उसे व्याकुल और अधीर नहीं बनाते। किन्तु जो अज्ञानी पुरुष हैं वे भूल से जगत के व्यापारों में मन बुरी तरह से फँसा देते हैं; और जो चीज उनकी नहीं है उसे वे अपना मानते हैं। यह अपना मानने की धारणा ही जगज्जाल से नहीं छूटने देती। और होता यह है कि वे एक चोले से निकलने पर अपने धन, वैभव और कुटुम्ब आदि की ममता साथ साथ रखने के कारण फिर दुनिया में आ फँसते हैं और कर्मानुसार मनुष्य, पशु या पक्षी का चोला पाकर माया के दुख सुख फिर भोगते हैं। ज्ञान प्राप्त करने के लिए बार बार यह विचार मनमें लाते रहना चाहिये कि संसार नाश होने वाला माया का व्यापार है, और मैं उस भगवान की महान्

आत्मा का अंश है जो कभी नाश नहीं होता और जो जगत् के सारे व्यापारों से अलग थलग रहता हुआ सदैव सुख शान्ति और आनन्द से पूर्ण है। इस भाव को सदैव अन्तःकरण में बनाये रखने के लिए संस्कृत के एक ज्ञानी कवि का निम्न-लिखित श्लोक कण्ठ कर लेना चाहिए। वह श्लोक यों है:—

श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः ।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नाऽपर ॥

अर्थात्—जो बात करोड़ों ग्रन्थों में कही हुई बातों का निचोड़ है वह मैं आधे श्लोक के रूप में कहे देता हूँ। वह बात यह है कि 'संसार झूठा है, केवल एक ब्रह्म ही सच्चा है, और जीव जो है वह इसी सच्चे ब्रह्म का अंश है, और कुछ नहीं]

यहां तलक श्रीकृष्ण ने, वर उपदेश सुनाय ।
पूछा अर्जुन शिष्य से, प्रेम--सहित मुसकाय ॥

"अर्जुन, बोलो उपदेश मेरा, यह सुना है तुमने चित लाकर ।
सो मन का संशय दूर हुआ, या नहीं उसे सुन लेने पर ॥
यदि अब भी शंका बाकी हो, तो झटपट उसे दूर करलो ।
देरी होरही शीघ्र उठो, धन्वा पर तीव्र तीर धरलो ॥"

मधुसूदन के इस तरह, सुने जभी वर वैन ।
अर्जुन यों कहने लगा, भरे प्रेम—जल नैन ॥

"शंका संशय सन्देह सभी, मिटगए हृदय के भीतर के ।
हे नाथ, आपकी कृपा हुई, खुलगए नेत्र उर अन्तर के ॥
उपकार प्रभो, उपकार किया, भूले को मार्ग दिखाया है ।
फैला था चहुंधा अन्धकार, दीपक से उसे मिटाया है ॥
आज्ञा है आपकी शिरोधार्य, धनुबाण उठाता हूं भगवन् ।
रथ आगे और बढ़ा दीजे, रण-रङ्ग रचाता हूं भगवन् ॥
अब से अपने तन मन धन के, जीवन के सब व्यापारों के ।
गोविन्द, आपही मालिक हैं, काया के सारे कारों के ॥

विश्वास आप में दृढ करके, कर्मों में हाथ लगाऊँगा ।
फल उन कर्मों का आपी के चरणों में भेंट चढ़ाऊँगा ॥
मन इच्छा के आधीन न हो, आधीन आपके होऊँगा ।
कर एक आप से आपे को, आपे की चिन्ता खोऊँगा ॥
बस, विनय आपसे इतनी है, अपना जन मुझे बना लीजे ।
हे भक्तों के भव-भय-भञ्जन, मेरी भव--भीति भगा दीजे ॥

योगिजनों के जिस तरह, राम विदित आराम ।
मेरे भी होजाइये, आप वही घनश्याम !

गाना

वैनों में रहा करना, नैनों में बसा करना ।
जीवन—मरुस्थली में, अमृत हो बहा करना ॥
मैं प्रेम से तुम्हारा, होता हूं अब पुजारी ।
तुम मेरे मन—भवन में, ठाकुर हो रहा करना ॥
विषयों के विकारों से, पीडित हो जब पुकारूँ ।
तब कान लगा देना, बस इतनी दया करना ॥
मैं भक्ति से भ्रमर हो, विचरूँगा कमल—बन में ।
मकरन्द होके प्रभु, तुम, कमलों में मिला करना ॥
कर्मों की बेड़ियां जो, मुझको कभी जकड़ लें ।
तो नाथ छुड़ा लेना, उपकार इतना करना ॥
जब सब तरफ से मुझको, आशायें छोड़ जायें ।
तब आश का दीपक हो, तुम मन में जगा करना ॥
माया से लड़ते लड़ते, हो जाऊँ मैं शिथिल जब ।
तब मेरी ओर होकर, माया से लड़ा करना ॥
अपना करो तो स्वामिन्, अपना बना के रखना ।
भव की विपत्तियों से, उद्धार मेरा करना ॥

—c—

इतनी यह पावन कथा, कहकर भली प्रकार ।
संजय यों धृतराष्ट्र से, बोला वचन विचार ॥

"राजन् यह परम पवित्र कथा, जो मैंने तुम्हें सुनायी है ।
यह कथा वही है अर्जुन से, जो स्वयं कृष्ण ने गायी है ॥
श्री व्यासदेव की महिमा से, यह कथा ज्ञान से भरी हुई ।
अक्षरशः मैंने सुनली है, माधव के मुख से कही हुई ॥
श्री वासुदेव और अर्जुन की सम्वादमयी यह गाथा है ।
ज्यों ज्यों करता हूं स्मरण इसे, त्यों त्यों मन में सुख आता है ॥
फिर वह विराट् और विश्वरूप, जो दिखा चुके हैं गिरिधारी ।
जब उसे ध्यान में लाता हूं, तब होता है विस्मय भारी ॥
मेरी तो है बस राय यही, श्रीकृष्ण और अर्जुन हों जहां
अक्षय कल्याण कीर्ति लेकर, सन्तत राजेगी विजय वहां ॥

उपसंहार

पूर्ण हुआ भगवान् की गीता का आख्यान ।
अब उसके माहात्म्य का करना है कुछ गान ॥

सारे उपनिषदों को मानों, एक उत्तम गाय बनाया है ।
उस गाय के नीचे अर्जुन को, बछड़े की भांति लगाया है ॥
गोविन्द आप ग्वाले बनकर, उस गाय को दुहने लगे जभी ।
यह प्राप्त हुआ अमृत-समान, गीतारूपी मृदु दुग्ध तभी ॥
इस दुग्ध को पण्डित पी पीकर, आत्मा बलवान् बनाते हैं ।
हरषाते हैं हुलसाते हैं, पुलकाते हैं सुख पाते हैं ॥
इस गीता को जो जन गाते, उनको कुछ पाप न लगपाता ।
जिस तरह जलाशय के भीतर, जल रहे कमल से बिलगाता ॥

गीता का ज्ञान हृदय धरके, भगवान् स्वयं सुख पाते हैं ।
गीता के ज्ञान सहारे से, सारा संसार चलाते हैं ॥
गीता की पुस्तक रहे जहां, सब तीर्थ वहां नित आते हैं ।
श्रीकृष्ण आप उस जगह पहुंच, अपना शुभ धाम बनाते हैं ॥
गीता में ज्ञान कहा है जो, वह अत्यद्भुत है अनुपम है ।
पापों का कल्मष धोने को, वह निर्मल गंगाजल-सम है ॥
सारांश यही अति पुण्यपूर्ण पावन और परम पुनीता है ।
कलिमलहारिणि,भवभयदारिणि,दुखदुरितनिवारिणिगीताहै॥

❀ गाना ❀

—:o:—

गीता तारिणी है, त्रिपद् —विदारिणी है ।
मंगल—कारिणी है, सुख— संचारिणी है ॥
गीता को नित पढ़ता जो नर, श्रद्धा-सहित सप्रीति ।
उसे सताती कभी न आकर, भीषण भव की भीति ॥
कल्मष—हारिणी है, क्षेम—प्रसारिणी है ।
गीता तारिणी ॥
विमल ज्ञान-गङ्गा है यह, जो कलिमल करती नाश ।
थोड़े से ही श्रवणमात्र से, छूट जाय यम-पाश ॥
माया मारिणी है, दुरित-निवारिणी है ।
गीता तारिणी० ॥
जहां कथा होती गीता की सुन्दर सुखद रसाल ।
वहाँ निवास करें निशि वासर, स्वयं कृष्ण गोपाल ॥
बाधा-वारिणी है, पातक-जारिणी है ।
गीता तारिणी० ॥

—o—

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

❀ समाप्त ❀

नक़ली किताबों से बचिये

हमारी रामायण और हमारे नाटकों का काफ़ी प्रचार देखकर लोगों ने उसी रंग और रूप की नक़ली किताबें छाप छापकर प्रकाशित करदी हैं। नक़्क़ालों की कई बरस की कोशिश का नतीजा यह है कि बाज़ार में नक़ली किताबों की भरमार है। यह नक़ली किताब)॥ में बुकसेलर को दी जाती है, जिसे बुकसेलर -) या =) या ≡) में बेचकर फ़ायदा उठाता है और इस प्रकार ग्राहक को धोखा दिया जाता है। ग्राहक जब ऐसी किताब को घर ले जाता है तो पछताता है। ग्राहक को ऐसी धोखेबाज़ी से बचाने के लिये अब हम अपनी हर एक किताब के ऊपर अपनी तस्वीर देने लगे हैं, जैसी कि इस किताब पर आप देख रहे हैं। अब आइन्दा से आप धोखा न खाइयेगा—

ध्यान रहे—

जिन किताबों पर—"राधेश्याम" या—"राधेश्याम वाशिष्ठ" या "तर्ज़—राधेश्याम" छपा रहता है, वह हमारे यहाँ की नहीं हैं। हमारे यहाँ की किताबों पर हमारे यह दस्तख़त भी रहते हैं! इन्हें पहचान लीजिये—

राधेश्याम

भवदीय—

राधेश्याम कथावाचक

मालिक—श्रीराधेश्याम पुस्तकालय व प्रेस, बरेली।